## 1930C Marriage as a social concern A

These essays explore institution of marriage. Presented (by?) as the President's address to All India Digambar Jain Mahasabha.

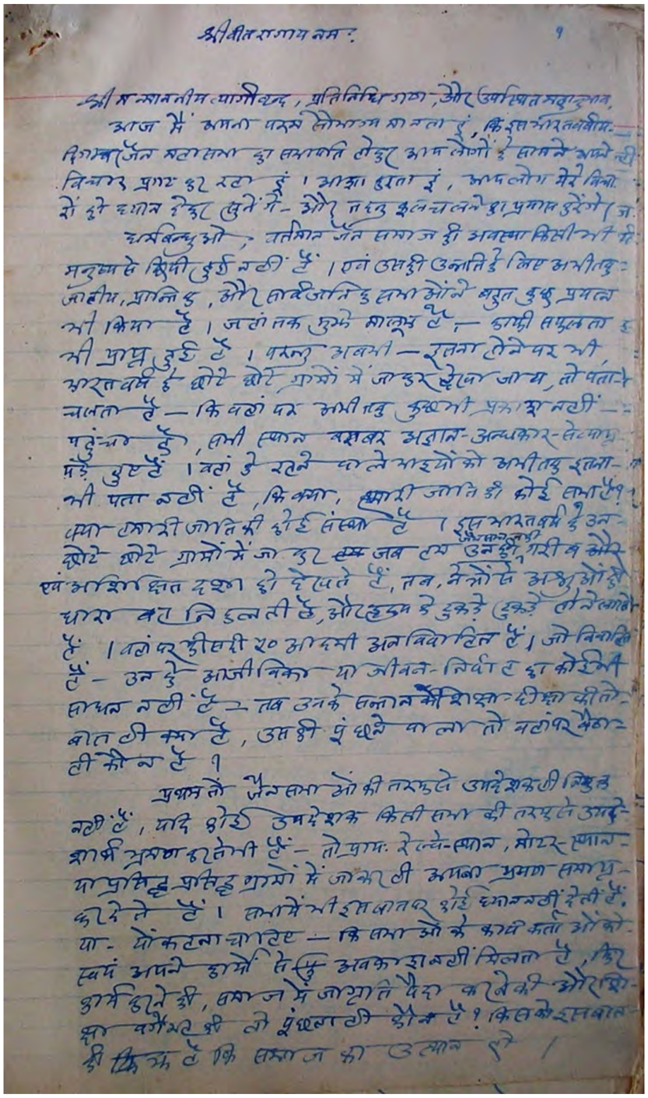

श्रीवीतरागाय नमः 1

श्रीमन्माननीय सभापतिवृन्द, प्रतिनिधिगण, और उपस्थित सद्गृहस्थ,

आज मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूं, कि इस भारतवर्षीय-दिगम्बर जैन महासभा का सभापति होकर आप लोगों के सामने अपने ही विचार प्रगट कर रहा हूं। आशा करता हूं, आप लोग मेरे विचारों को ध्यान देकर सुनेंगे- और तदनुकूल चलने का प्रयत्न करेंगे। [illegible]

धर्मबन्धुओ, वर्तमान जैन समाज की अवस्था किसी भी विचारशील मनुष्य से छिपी हुई नहीं है। एवं उसकी उन्नति के लिए अभीतक जातीय, प्रान्तिक, और सार्वजनिक सभाओं ने बहुत कुछ प्रयत्न भी किया है। जहां तक मुझे मालूम है, काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। परन्तु अवश्य — इतना होने पर भी भारतवर्ष के छोटे छोटे ग्रामों में जाकर देखा जाय, तो पता चलता है — कि वहां पर अभीतक कुछ भी प्रकाश नहीं — पहुंचा है, सभी स्थान बराबर अज्ञान-अन्धकार-से व्याप्त पड़े हुए हैं। वहां के रहने वाले भाइयों को अभीतक इतना भी पता नहीं है, कि क्या, हमारी जाति की कोई सभा है? क्या हमारी जाति की कोई संस्था है। इस भारतवर्ष के उन छोटे छोटे ग्रामों में जाकर जब हम उनकी (जैनसमाज की) गरीब और एवं अशिक्षित दशा को देखते हैं, तब, नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह निकलती है, और हृदय के टुकड़े टुकड़े होने लगते हैं। वहां पर फीसदी २० आदमी अनविवाहित हैं, जो विवाहित हैं — उनके आजीविका या जीवन-निर्वाह का कोई भी साधन नहीं है — तब उनके सन्तान की शिक्षा-दीक्षा की तो बात ही क्या है, उसकी पूंछने वाला तो वहां पर कोई ही कौन है?

प्रथम तो जैन सभाओं की तरफ से उपदेशक ही नियुक्त नहीं हैं, यदि कोई उपदेशक किसी सभा की तरफ से उपदेशार्थ भ्रमण करते भी हैं — तो प्रायः रेल्वे-स्टेशन, मोटर-स्टेशन या प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रामों में जाकर ही अपना भ्रमण समाप्त कर देते हैं। सभायें भी इस बात पर कोई ध्यान नहीं देती हैं, या- यों कहना चाहिए — कि सभाओं के कार्यकर्ताओं को स्वयं अपने कार्यों से ही अवकाश नहीं मिलता है, फिर कार्य करने की, समाज में जागृति पैदा करने की और शिक्षा वगैरह की तो पूंछता ही कौन है? किसको इस बात की फिक्र है कि समाज का उत्थान हो।

अतएव इस तरह मैं समाज का ध्यान आकर्षित कर — जैन समाज से निवेदन करता हूं, कि प्रथम तो वह उन्हीं मनुष्योंके हाथ में कार्यभार सौंपे, जिनके हृदय पर समाजका वास्तविक चित्र-अङ्कित हो, जो हृदय से समाज के उद्धार की भावना रखते हों। जिनको समाजके कार्य प्राणों से भी प्यारे हों। एवं जो निस्वार्थ-त्यागी, उदाराशय और शिक्षित हों।

~~सभाओंका उद्देश्य केवल प्रस्ताव पास करना रह गया चाहिए।~~ २ जैन सभा में

वर्तमान सभाओंकी अवस्था देखते हुए ~~ये शब्द~~ मुख से ये शब्द सहसा निकल पड़ते हैं कि सभाओं का मुख्य उद्देश्य आजकल केवल प्रस्ताव पास करना ही रह गया है, सभासद और कार्यकर्ताओंका उद्देश्य केवल सभामंडप में पधारकर शोभा बढ़ाना ही रह गया है। और पंडितों और वक्ताओं का उद्देश्य केवल बड़े जोर-शोर के शब्दों में व्याख्यान झाड़ना ही रह गया है।

मैं तो जहां तक अपनी विचार-दृष्टि को दौड़ाता हूं, वहांतक मुझे यही दिखाई देता है कि वास्तव में आजकल कोई भी मनुष्य अपने कर्तव्यका पालन नहीं कर रहा है। यही कारण है कि आज इस महासभा को स्थापित हुए पूरे ३२ वर्ष पूर्ण होगए — परन्तु इतने लम्बे चौड़े समय में जो वास्तविक उन्नति होना चाहिए थी, वह नहीं हो सकी है। आज से ७० वर्ष पहिले जो जापान देश बिलकुल अशिक्षित गरीब, और असभ्य था, वही ५० वर्ष के भीतर, शिक्षित, धनाढ्य और सभ्य बन गया है, आज उसकी गिनती उन्नत व सभ्य देशों में की जा रही है। आज वह अमेरिका यूरोप, व जर्मनी से टक्कर लगा रहा है। यदि इसी प्रकार हमारी जैन समाज ने भी, कुरीति-प्रवाह को रोककर, जैन समाज के उत्थान का बीड़ा अपने हाथ में लिया होता, यदि हमारी समाज के प्रमुख, तन मन और धन से जैन समाज को उन्नत होने की चेष्टा करते, और प्रान्त-प्रान्त में, ग्राम-ग्राम में, शिक्षा संस्थायें खोलकर, धनवान् क्या, गरीब क्या, सभी को शिक्षा-सम्पन्न बनाते, दीन, अनाथ और असहायकों की रक्षा के वास्ते फंड कायम करते — उनको बिना ब्याजी रकम व्यापार के लिए देकर उनको —

निर्धन-दशा को सुधारते, गरीब और धनवान का भेदभाव मिटा-
कर उनको साथ समदृष्टि से व्यवहार करते, तो क्या आज
हमारा जैन समाज भी उन्नत हुआ दिखाई न देता? क्या
जैन समाज फिर से पुनः नव जीवन संचारित न हो जाता?
क्या नहीं पूर्वकालवत् फिर हमारे नेत्रों के सामने झिलमिला-
कर दिखलाई न दे जाता? और फिर हमारी परिगणना
क्या शिक्षित, धनवान और बलवान जातियों में नहीं की जाती?
आज जो समाज मुर्दा समाज के नाम से पुकारा जा रहा
है - वही ही क्या शिक्षित और सभ्य समाज के नाम से नहीं
पुकारा जाता?

अतएव धर्मबन्धुओ, अब आपसी कलह के बीज, कुरी-
तियों, द्वेषाग्नि को शान्तकर जैनसमाज में ऐक्य स्थापन
करें। छोटी बड़ी सभी जातियों को एकता के सूत्र में बांधो।
क्या छोटे बड़े ~~कली-कलियों के~~ फूल, नीले लाल, सफेद रंग के फूल
~~भी~~ एक ही सूत्र में पिरोये जाकर माला की शोभा को नहीं
बढ़ाते? क्या छोटी बड़ी अंगुलियां ~~भी~~ एक ही हाथ में संयुक्त
होकर हाथ की शोभा को नहीं बढ़ाती। क्या छोटे बड़े सभी तरह
के अंग-उपांग सम्मिलित होकर शरीर के सौन्दर्य को नहीं
बढ़ाते। फिर समझ में नहीं आता - क्यों आज जैनसमाज
का बच्चा बच्चा व्यक्तिगत व जातिगत प्रभाव से प्रभावित
~~हो चुका~~ हो रहा है? क्यों जैन जातियों में जातिगत, मर्यादाओं
को उल्लंघन करने वाला, भेदभाव बढ़ रहा है? अपनी-
योग्यता प्रमाण स्वाभिमान का होना नाम मात्र उचित है, परन्तु
यदि वही स्वाभिमान, दुरभिमान की चरम-सीमा पर पहुंच जावे-
तो क्या - वह नाश-संहारक हो जा सकता है? क्यों नहीं?

अतः महासभा का कर्तव्य है - कि वह अपने विशाल-क्षेत्र
में सबको स्थान देकर जैन धर्मानुकूल आचरण कराने का
प्रयास करे। वर्तमान के नाम जैनियों को सच्चा जैनी बनावे;
और दिन पर दिन गिरती हुई इस जैन समाज की अवस्था को
सम्हाल कर उन्नत होने का मार्ग सोचे। जातीय व
प्रान्तिक सभाओं के कार्यों की बागडोर अपने हाथ में लेकर
उनकी उन्नति करती हुई स्वयं उन्नत होने की चेष्टा करे।

यदि वर्तमान परिस्थिति पर ही संतोष किया जायगा - तो मैं दावे के
साथ कह सकता हूं कि इस जैन जाति का पूरे २०० वर्ष में ह्रास हो
जायगा - और इतिहास में इसका नाम शेष रह जायगा।

## २- शिक्षा संस्थायें व शिक्षा प्रणाली

इसमें सन्देह नहीं, कि आज से २५ वर्ष पूर्व शिक्षा-संस्थाओं का बिलकुल अभाव था, जैन समाज बिलकुल अशिक्षित था, [illegible] तत्त्व-चर्चा तो [illegible] दूर रही - मनुष्य भाषा-पुजनों तक को भी स्पष्ट नहीं पढ़ सकते थे - और आज जैन समाज के प्रमुखों के उद्योग से अनेक शिक्षा संस्थायें दृष्टिगोचर हो रही हैं। अनेक विद्वान नजर आते हैं परन्तु - जैन समाज का इतना विपुल-द्रव्य खर्च होने पर भी, जो वास्तविक सफलता प्राप्त होना चाहिए थी - वह नहीं हो सकी है। वर्तमान शिक्षा संस्थाओं से निकले हुए विद्वानों में जो पांडित्य पूर्ण-विद्वत्ता होनी चाहिए थी - वह नहीं है। यही कारण है कि हमारे विद्वान् लोग अपने विचारों को, जैन धर्म के रहस्यपूर्ण सिद्धान्तों को दूसरे लोगों के सामने रखने में समर्थ नहीं हैं। मैं इस बात को मानता हूं, कि हमारे समाज में कुछ एक दिग्गज-विद्वान् हैं - परन्तु क्या २-४ के होने से जैन धर्म का डंका सारे संसार में फूंका जा सकता है? और क्या दश-पांच विद्वान् व्यक्ति इतने बड़े जैन समाज के प्रतिदिन होने वाले अधःपतन को थाम सकते हैं? और क्या इने गिने पुरुषों से, जीवन-संग्राम का युद्ध जीतकर हम धर्म युद्ध पर विजय-लाभ प्राप्त कर सकते हैं। करोड़ों मनुष्यों के सामने [illegible] करने के लिए हमको, लाखों नहीं तो हजारों सैनिकों को अवश्य ही तैयार करना होगा। तभी हम जैन धर्म व जैन समाज का सच्चा उत्थान कर सकेंगे। तभी हम इस कठिन संसार यात्रा में अपना निर्वाह [illegible] कर सकेंगे।

अतः हमारा कर्तव्य है कि वर्तमान में जो शिक्षा संस्थायें चल रही हैं - उन सब के कार्यकर्ताओं की एक कमेटी बना कर नये ढंग का कोर्स बनावें। जिसमें धार्मिक शिक्षा के साथ साथ लौकिक व औद्योगिक-शिक्षा अवश्य रक्खी जावे। जिससे विद्वान लोग अन्य व्यापारिक-उपायों से द्रव्योपार्जन करते हुए अपने अपने प्रान्तों में सत्-शिक्षा का प्रचार कर सकें। और स्वर्गीय पंडित प्रवर सदासुखदासजी, टोडरमलजी, दौलतरामजी, [illegible] सरीखे विद्वान पैदा हो सकें।

संसार इस बात को मानता है कि किसी भी समाज या देश की उन्नति शिक्षा के ऊपर ही निर्भर है — जो समाज या देश, जितना ही शिक्षा-सम्पन्न बनने की चेष्टा करेगा - वह उतना ही उन्नत व सम्पन्न होगा। जैन धर्म के पूर्व इतिहास पर दृष्टि डालने से इस बात का पता चलता है ——

कि पूर्व जमाने में ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के प्रत्येक बालक को प्रारंभ से ही शिक्षा लेना आवश्यक कार्य माना जाता था — शिशुकाल से ही उनको ब्रह्मचर्याश्रमों में — गुरुकुलों में रहना पड़ता था। और जब तक उनका ब्रह्मचर्य काल पूरा नहीं हो जाता था — तब तक कभी भी बीच में वे ब्रह्मचर्याश्रमों को नहीं छोड़ सकते थे। यही मुख्य कारण था — कि उस समय के मनुष्यों का शरीर-संगठन अत्यन्त दृढ़ होता था। हजारों विकट काले वरसों से अत्यन्त बलवीर्यशाली, करोड़ों मनुष्यों के मान-मर्दन करने वाले योद्धा-भट, और जन्म-पर्यन्त अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहनेवाले होते थे। कठिन से भी कठिन यदि धार्मिक-संकट सामने आ जाता था — तो वे अपने प्राणों को भी निछावर बात की बात में कर देते थे। श्रीमद् अकलंकदेव और निकलंक देव इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

यदि हमारा जैन समाज आज भी इस बात को मान ले, और शिक्षा-संस्थाओं का ढंग बदल कर फिर उसी तरह के ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित कर दे — तो इस बात के करने में कोई संदेह नहीं — कि फिर एक बार, अवनत हुआ यह जैन समाज, उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच जावे। क्योंकि, किसी भी देश या समाज की उन्नति उसके छात्रों पर ही अवलम्बित रहा करती है।

इस प्रकार के ब्रह्मचर्याश्रम, भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में खोले जावें। जिनके चारों तरफ जैन समाज की संस्थायें विद्यमान हों। और आसपास के प्रत्येक ग्राम का एक जैन छात्र उसमें अवश्य ही भर्ती किया जावे। कम से कम उसमें रहने वाले छात्रों को १० वर्ष का प्रवेश कराया जावे। प्रवेश होते ही उनको ब्रह्मचर्य और यज्ञोपवीत की दीक्षा से दीक्षित किया जावे। ऐसी शिक्षा संस्थाओं के अधिष्ठाता-विद्वान, त्यागी, और आदर्श चरित्र वाले ही बनाये जावें। जिनसे छात्रों को समय समय पर समाज-सेवा की भी शिक्षा मिलती रहे। इस प्रकार की संस्थाओं में प्रत्येक छात्र को देव पूजा, स्वाध्याय व सामायिक प्रतिदिन करने का अटल नियम बनाया जावे। ऐसा होने से जब बाल-काल से ही उनके संस्कार अत्यन्त दृढ़, व धार्मिक-भाव अत्यन्त दृढ़ हो जावेंगे — तब कैसा ही खोटा समय क्यों न आ जावे फिर भी वे अपने पद से च्युत न होंगे।

अतः प्रत्येक समाज, व प्रत्येक विचार-शील मनुष्य का यह प्रधान कर्तव्य है कि वह शिक्षा की तरफ सर्व प्रथम लक्ष्य देवे। शिक्षा-बालक व बालिका-दोनों को परम-आवश्यक है — देखो-श्री आदिनाथ ने अपनी पुत्र व पुत्रियों को स्वयं शिक्षा दी थी। अतः बिना शिक्षा प्रचार के समाजोत्थान होना असंभव है॥

## ३- वर्तमान जैन पंचायत

वर्तमान जैन समाज की पंचायत पर दृष्टि डालने से इस बात का पता चलता है - कि अब पंचायतें केवल ढकोसला मात्र रह गई हैं।
वास्तव में जो उनका उद्देश्य था - अब उसका लेशमात्र भी उनमें नहीं रह गया है - और यही कारण है - कि दिन पर दिन मुकद्दमा-बाजी - व फूट बढ़ रही है - मुकद्दमा बाजी में तो हमारी यहाँ तक अवस्था पहुँच चुकी है - कि कोई भी जाति की बात अब बिना अदालत का दरवाजा खटखटाये तै नहीं हो सकती। इसी प्रकार फूट का भी यही हाल है - कि जिस ग्राम में केवल ५ घर ही जैनी हैं - वहां पर ३ आदमी अलग अपना राग आलाप रहे हैं - तो २ आदमी अलग अपनी डेढ़ चांवल की खीचड़ी पका रहे हैं। यही कारण है कि हमारे समाज की दिन प्रति दिन अवनति हो रही है। यदि एक पंचायत किसी मनुष्य को अपराधी ठहराती है तो - वहीं पर दूसरी पंचायत उसको निर्दोष सिद्ध कर देती है भला जहां पर इस प्रकार की अवस्था है - वहां क्या सत - असत का निर्णय हो सकता है। और इसी वजह से, इसी आपसी वैमनस्य से ही हमारे धार्मिक-कार्यों में भी बाधा आ रही है।

अतः समाज के प्रत्येक नवयुवक का कर्तव्य है कि वह सर्व प्रथम समाज-संगठन करे। प्रत्येक जैन व्यक्ति में धार्मिक प्रेमभाव जागृत करे। उनको एकता के सूत्र में बांधे। उनको इस बात का पाठ पढ़ा दे - कि उनका जन्म ऐश आराम करने, व परस्पर कलह बीज बोने के वास्ते नहीं हुआ है - किन्तु उनका जन्म जैन धर्म की उन्नति करने वास्ते हुआ है। उनका सारा जीवन जैन समाज की रक्षार्थ ही हुआ है। जब तक इस प्रकार के उच्च विचार हम लोगों के हृदय में स्थान नहीं पायेंगे - तब तक हमारी उन्नति होना अशक्य है। "पंचों में परमेश्वर आता है" यह लोकोक्ति तभी चरितार्थ होगी - जब हम स्वयं न्याय नीति का अनुसरण करेंगे। स्वयं पतित न होते हुए दूसरों को पतित होने से बचायेंगे। स्वयं अन्याय न करते हुए दूसरों को अन्याय करने से रोकेंगे।

जब तक हमारे हृदय में विश्व प्रेम का भाव जागृत नहीं होगा - दुनियां को विश्व प्रेम का पाठ नहीं पढ़ायेंगे - तब तक हमारी यथार्थ - उन्नति का होना शक्य नहीं। अतः धर्मबन्धुओ, अब भी चेतो, इस गाढ़ निद्रा का परित्याग करो। और फिर एक बार समाज-संगठन कर दुनियां के सामने सच्चे जैन धर्म का आदर्श खड़ा कर दो। और बतला दो, कि जैन धर्म और जैन समाज किसे कहते हैं। तभी हमारी पंचायत नाम सार्थक होगा।

# ४- जैन समाचार पत्र



वर्तमान जैन समाचार पत्रों के दुर्नीति-भरे लेखों को देखकर हृदय में अत्यन्त दुःखित होता है। उनकी नीति, उनका ढंग, उनके विचार, उनके उद्देश्यों से बिलकुल प्रतिकूल हो रहे हैं। किसी विषय पर स्पष्ट विचार न कर गाली गलौज देना उनका उद्देश्य हो रहा है। यही कारण है कि इन समाचार पत्रों से जैन समाज को जो लाभ होना चाहिए था — वह नहीं हो सका है।

वर्तमान समय में जैन समाचार पत्रों द्वारा जैन साहित्य के प्रचार की अत्यन्त आवश्यकता है। इस समय प्रत्येक राष्ट्र अपने साहित्य की उन्नति में लगा हुआ है। और इसी ही कारण से साहित्य की उन्नति करते हुए ही पर-राष्ट्र उन्नत व सभ्य बन रहे हैं। जब तक जैन साहित्य का प्रचार न होगा — तब तक इस अशिक्षित व अवनत जैन समाज का उद्धार होना असंभव है। हमको अपने साहित्य-प्रचार के लिए स्थान स्थान पर सरस्वती-भवन खोलने होंगे। जैन धर्म के अच्छे जानकारों को प्रचार का कार्य सौंपना होगा, जो स्वयं धर्म में अत्यन्त दृढ़ होंगे। तभी जैन धर्म की वास्तविक उन्नति हो सकेगी।

समाचार-पत्रों का कर्तव्य है कि वे बहुत शीघ्र अपनी नीति बदल दें — व तत्त्व-चर्चा पूर्ण लेखों को स्थान देकर जैन धर्म-पिपासुओं को सत्य-धर्म का स्वरूप बतलावें। जहां तक वर्तमान समय में चलती हुई इस दूषित वायु से दूर रहते हुए — रात्रि-दिन जैन साहित्य की उन्नति करते हुए उसके प्रचार में दत्त-चित्त रहें। समाज का कर्तव्य है — कि वह उन्हीं मनुष्यों को समाचार पत्र सौंपे, जिनके हृदय में समाज की लगन हो, जो निष्पक्ष, विद्वान्, उदाराशय व समाज-हितैषी हों। जब तक इस बात की कमी रहेगी, तब तक समाचार पत्रों से समाज को जो वास्तविक लाभ होना चाहिए — कभी नहीं हो सकेगा.

इस समय समाज का कर्तव्य है — कि वह इस ढंग की व्यवस्था करे — जिससे प्रत्येक ग्राम में, जहां पर कम से कम जैन समाज का १ कोई घर हो — जैन समाचार पत्र अवश्य पहुंचे। इससे लोगों के हृदय में धार्मिक भाव जागृत होंगे। वे सत्य-असत्य का निर्णय कर सकेंगे और इससे अपना आत्म-कल्याण भी कर सकेंगे।

## ५- बाबू पंडित का भेद

वर्तमान समय में— समाचार-पत्रों में, सभा-सोसाइटियों में; जहाँ देखो, वहीं ही, बात बात में मतभेद पड़ जाता है और यहाँ तक नौबत पहुंचती है— कि उनमें लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता है। बाबू-पंडितजी को देखकर घबराते हैं, और पंडित बाबूजी को देखकर भौंहें सिकोड़ते हैं। पंडितलोगों का कहना है कि बाबूलोग धर्मभ्रष्ट होते हैं, नीच विचारवाले होते हैं, पाश्चात्य-सभ्यता पोषक होते हैं इत्यादि; बाबूलोगों का कहना है कि— पंडितलोग लोक-व्यवहार नहीं समझते हैं, लकीर के फकीर होते हैं, रूढ़ियों के गुलाम होते हैं, इत्यादि....। बस, इसी ढंग से मत-भेद बढ़ता ही जाता है— सुलह के स्थान में— उल्टी द्वेषाग्नि और भी प्रज्वलित हो जाती है। और इस प्रकार दिन पर दिन जो शान्ति, एकता, उन्नति या सद्विचार की वृद्धि होना चाहिए थी— नित खोखल होती जा रही है।

मैं यहाँ पर एक बात समाज को बतला देना चाहता हूँ, वह-यह- कि बाबूलोगों के धर्मभ्रष्ट या पतिताचारी होने में हम लोग ही अपराधी हैं। यदि हम लोगों ने प्रारम्भ से ही उनके धर्म-शिक्षण की योजना की होती— प्रबन्ध किया होता— तो क्या वे लोग धर्म-भ्रष्ट हो जाते? कभी नहीं। अनेक अंग्रेजी पढ़े लिखे विद्वान इस बात के प्रमाण हैं— कि वे आज भी, संस्कृत-पढ़े लिखे अनेक विद्वानों से उत्तम आचार-विचार वाले— व नित्य पूजन- स्वाध्याय करनेवाले हैं। इससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है— कि जिन अंग्रेजी-पढ़े लिखे विद्वानों को— धार्मिक शिक्षण का प्रबन्ध न रहा— जो प्रारम्भ से ही होटलों में भोजन करते रहे— प्रारम्भ से ही जिनके भीतर सद्विचार प्रविष्ट नहीं हो सके, प्रारम्भ से ही जिनकी संगति- पाश्चात्य ढंग की रही— उन्हीं लोगों के विचार धर्म से प्रतिकूल हो गए। संगति से गुण-दोषों का पैदा होना स्वाभाविक है— तिस पर तो— वे रात्रि-दिन- लगातार कई वर्षों तक उसी ढंग की शिक्षा प्राप्त करते रहे— फिर यदि उनके विचार धर्म से प्रतिकूल हो गए— तो इसमें आश्चर्य या खेद की कौन बात है।

हाँ, इसमें तो अपराध हम लोगों का ही है जिन्होंने बाल्य से ही उनके शिक्षण-दीक्षा का प्रबन्ध नहीं किया।

इसी प्रकार यह कहा जाना कि पंडित लोग - लोक-व्यवहार शून्य हैं। रूढ़ियों के पुजारी हैं इत्यादि, सो प्रथम तो यह बात ही सत्य नहीं है, दूसरे यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय - तो भी इसमें हम लोगों का ही दोष है। क्योंकि प्रथम तो हम लोगों ने ज्ञान की कद्र नहीं की, विद्वानों का सम्मान नहीं किया - दूसरे उन लोगों की आजीविका पराधीन होने से भी वे लोग अन्ध-श्रद्धा के भक्त बन गए। उन्हें भय है कि यदि हम सत्य बात को कहेंगे - तो हमारी आजीविका में धक्का लगेगा। तो जब हम लोग जब स्वयं सद्विचारों को - स्वतन्त्र विचारों को सुनने के लिए तैयार नहीं हैं - तब कैसे यह माना जावे - कि पंडित लोग दोषी हैं। कहने का सारांश यह है कि सर्व प्रथम अपना दोष देखना चाहिए - यदि वास्तव अपना दोष होवे - तो उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। मैंने तो जहां-तक इस बात पर विचार किया है - यही अनुभव हुआ है कि इसमें सबसे अधिक हम लोगों का ही है। अतः अब समाज का कर्तव्य है - कि वह इस ढंग की शिक्षा संस्थायें खोले - जहां पर धार्मिक व लौकिक दोनों ढंग की शिक्षायें दी जावें। जहां पर सदाचार की शिक्षा सक्रिय रूप पढ़ने वालों के हृदयों में अङ्कित कर दी जावे। और जब तक इस ढंग के विद्यालयों का प्रबन्ध न हो तब तक अंग्रेजी कालेजों के आश्रित बोर्डिंग खोल दिये जावें। जिनमें शुद्ध खान-पान की व्यवस्था के साथ साथ धार्मिक शिक्षा व सदाचार-शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध रहे। इसी प्रकार वर्तमान में हमारे विद्यालयों में जो कमी है वह निकाली जाकर भावुकता का पाठ संस्कृतज्ञों को पढ़ाया जावे। उनको इस बात की शिक्षा दी जावे - कि जिस बात को तुम सत्य धर्म की कसौटी पर कस लो - खूब जांच कर लो - उसको निर्भय होकर जनता समाज के सामने रखो। कभी भी सत्य बात को जरा से प्रलोभन के पीछे मत छुपाओ। फिर आप लोग देखेंगे - कि येही पंडित लोग व बाबू लोग मिलकर के कितना काम करते हैं। अतः समाज का कर्तव्य है - कि दोनों दलों से मिलकर कार्य करने की प्रेरणा करे। व आगे के वास्ते उपरोक्त ढंग प्रबन्ध करने का प्रयत्न करे - तभी सफलता प्राप्त हो सकेगी।

## ६- बाल विवाह

बाल-विवाह का नाम सुनते ही हृदय एकदम धड़कने लगता है. इसी राक्षसी प्रथा ने ही हमारे देश व समाज को नष्ट भ्रष्ट कर दिया है? जब से इस प्रथा का बीजारोपण हमारे समाज में हुआ है तब से दिन पर दिन इसका प्रचार बढ़ता ही जाता है। समाज ने विवाह को गुड़ियों का खेल समझ रक्खा है — और यही जिसके कारण आज दिन हमारी समाज में लाखों विधवायें दुःख कूप में पड़ी पड़ी अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। हजारों शील-धर्म से च्युत होकर गुप्त पाप और भ्रूण हत्यायें कर धर्म और समाज का नाम डुबो रही हैं — उसे रसातल पर पहुंचा रही हैं। जैन समाज की मनुष्य गणना देखने से पता चलता है कि हमारी समाज में २-२ और ४-४ वर्ष तक की भी बाल विधवायें मौजूद हैं।

ओह, कितना अन्धेर, कितना अत्याचार, कि जिन बालिकाओं के दिन लाड़ प्यार के हैं, खेलने कूदने के हैं. जिन दिनों में उनको शिक्षा-दीक्षा दी जाना चाहिए थी, उन्हीं दिनों उनको रंडापे का दुःख भोगना पड़ता है.

इसी प्रकार जो दिन बालकों के खेल कूद कर आनन्द करने के हैं, जिन दिनों में उनको ब्रह्मचर्य धारण कर शिक्षा-सम्पन्न होना चाहिए — अपना शरीर-संगठन करना चाहिए. उन्हीं दिनों में, समाज के नव-युवक हमारे बाल-विवाह के बन्धन में बंध, अपने बल वीर्य को स्वाहा कर, अकाल में ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। कदाचित्, जीते भी रहे हैं, तो निःसत्व, निस्तेज, अकर्मण्य, काठ के पुतले सरीखे होते हैं। जिनसे समाज का उद्धार होना तो दूर रहा, अपना जीवन-निर्वाह भी सुख पूर्वक होना कठिन है. यही कारण है कि हमारी सन्तान दिन पर दिन क्षीण-वीर्य होती जाती है — और हम अपने बड़े भारी कुटुम्ब का भी ह्रास कर दिन पर दिन हीन संख्या वाले होते जाते हैं। हमारी समाज में सन्तान के मुख देखने की तो सबको पड़ी है — परन्तु किसी भी सहृदय व्यक्ति के दिमाग में यह बात न आई कि जब हम निम्ब के बीज बोते हैं — तब आम हमको कहां से मिल जायेंगे।

सभाओं ने इसके रोकने के लिए प्रस्ताव तो कई बार किए — उपाय भी सोचे, परन्तु असली उपाय की खोज अभी तक भी न कर सकीं। अतः समाज से एक बार फिर मेरा नम्र निवेदन है कि वह खास खास मनुष्यों की बैठक कर इस कुरीति-प्रवाह को रोकने की कोशिश करे — जबतक इस राक्षसी प्रथा को समाज से बहिष्कार नहीं होगा — तब तक जैन समाज की उन्नति होना असंभव है।

## ७- वृद्ध-विवाह

वृद्ध विवाह का नाम सुनते ही तो शरीर में एकबार बिजली सी दौड़ जाती है कि वृद्धों का विवाह कैसा — क्योंकि विवाह का जो उद्देश्य बताया गया है वह आजकल वृद्ध विवाह में नाम-निशान को भी नहीं पाया जाता है। अब तो केवल स्वार्थ-पूर्ति के लिए ही वृद्ध लोग विवाह करते हैं, कामवासना की शान्ति ही उनका एकमात्र उद्देश्य रह गया है। अब तो ऊंट-के गले में बिल्ली का सम्बन्ध किया जाता है, बेचारी कन्यायें लज्जा के मारे अपने सद्विचार मनुष्यों के सामने तक भी नहीं रख पाती हैं, जिनको जीवनभर मनुष्य के साथ रहना है — इतना ही क्यों, वृद्ध वर के परलोक वासी हो जाने पर कई वर्षों तक उनको रोते हुए संकट-मय अपना जीवन व्यतीत करना है। — सर्व प्रकार मनुष्य की आज्ञा में पराधीन रह कर पशुवत् जीवन बिताना है, उनको — उन बेचारी कन्याओं को इस बात की इत्तला तक भी नहीं दी जाती है कि तुम्हारा सम्बन्ध अमुक मनुष्य के साथ किया जा रहा है, तुम उसे चाहती हो, या नहीं।

धर्म बन्धुओ, विचार की बात है — कि कहां तो वह पूर्व ज़माना — जहां पर पिता की आज्ञानुसार कन्यायें अपनी इच्छानुसार अपने लिए पति को स्वीकार करें। और कहां आज यह ज़माना, जो बेचारी कन्यायें, अपने हृदय के विचारों को अपने हृदय में ही दबा कर रह जायें, और पराधीन होकर पशु की तरह नर-पिशाचों से बांध दी जावें। क्या इसको भी हम मनुष्यता कह सकते हैं? क्या ऐसा होते हुए भी हम जैनी कहला सकते हैं?

वास्तव में, विवाह के वास्ते कन्या और वर का परस्पर रज़ा है. क्योंकि आर्ष रीति से विवाह होने पर दोनों से एक ही ढंग की प्रतिज्ञायें कराकर उनका सम्बन्ध कराया जाता है। कन्या कहती है कि — यदि तुम मेरी इन सात प्रतिज्ञाओं — शर्तों को स्वीकार करते हो — तो मैं तुमको स्वीकार करती हूं। इत्यादि। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि विवाह-सम्बन्ध में कन्या और वर दोनों को ही अधिकार है कि वह अपनी इच्छानुसार ही कुलीन, सर्वगुण सम्पन्न सुवर या सत्कन्या का सम्बन्ध ढूंढें। माता-पिता केवल उनकी राज़ी मालूम कर उनका विवाह सम्बन्ध विधि-पूर्वक कर दें। इसके सिवाय अन्य बातों में उनको दखल देने की कोई आवश्यकता नहीं। अतः समाज का कर्तव्य है कि वह — जैनधर्म वर्जित समाज का नाश करने वाली इस कुरीति-प्रवाह को बंद करे। केवल प्रस्ताव पास करने से कुछ होने का नहीं। अब तो उसको अमल में लाने की ही आवश्यकता है।

## ८- विजातीय-विवाह

कुछ दिनों से समाज में विजातीय-विवाह की चर्चा जोर-शोर से चल रही है और दोनों पक्षों से खण्डन-मण्डन भी किये प्रकाशित किये गए हैं। लोग इसकी आवश्यकता संख्या वृद्धि करने के लिए व अनमेल सम्बन्ध रोकने के लिए बताते हैं। परन्तु जहां तक मैंने इस विषय पर विचार किया है - वहां तक मुझे इसके प्रचार से केवल सामाजिक हानियाँ ही हानियाँ दिखाई पड़ीं हैं। समाज के विचार के लिए कुछ एक हानियां पेश करता हूं। जो कि समाज के विचारने योग्य हैं।

१- जो जाति निर्धन है, जाति बन्धन के खुल जाने पर वह अपनी कन्यायें धनाढ्य जाति को ही देगी - क्योंकि सभी मनुष्य अपनी कन्यायें अच्छे घर में ही देना चाहते हैं - और देते भी हैं। अत: विजातीय-विवाह का द्वार खुल जाने पर बेचारे निर्धन-नवयुवक अनविवाहित ही रह जायेंगे। अभी तो जाति बन्धन का नियम होने से जाति में ही मजबूरन कन्या देना पड़ती है - चाहे वह गरीब हो या अमीर। परन्तु इस बन्धन के खुलते ही गरीब लोग बहुत अधिक संख्या में अनविवाहित रहेंगे।

२- वृद्ध विवाह का क्षेत्र बढ़ जायगा। क्योंकि अभी तो यदि जाति में बूढ़ों के लिए कन्या नहीं लगती है - तो वे हाथ मसोस कर रह जाते हैं। परन्तु जब जातीय-बन्धन शिथिल हो जायेगा - तो वे किसी न किसी जाति में से कन्या को ले ही उड़ेंगे - और सुधारक [illegible] सब हाथ मलते रह जायेंगे।

३- कन्या विक्रय भी आजकल की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ जायगा। और मौका पड़ने पर तो एक एक कन्या कई हजारों की संख्या में बेची जावेगी। अभी तो कुछ व्यक्तियों के बीच में ही यह प्रथा चालू है, परन्तु जातीय बन्धन शिथिल होते ही धड़ाधड़ कन्या विक्रय होंगे - और सब लोग चुपचाप उसको देखेंगे - क्योंकि आजकल जब इन जातियों में भिन्न भिन्न पंचायत व कमेटियां, सभायें होते हुए भी हम इस कुरीति-प्रथा को नहीं रोक सके हैं - तब आगे क्या आशा करें - कि हम इसे रोक लेंगे।

इस विषय पर खूब वाद-विवाद हो चुका है अत: अधिक कहना व्यर्थ है - परन्तु इतना अवश्य कहूंगा - कि समाज को प्रत्येक कार्य बड़े विचार के साथ करना चाहिए। अन्यथा बाद में बहुत पश्चात्ताप करना होगा।

1 विवाह का उद्देश्य

आज मैं आप लोगों के सामने एक विचारणीय प्रश्न लेकर उपस्थित हुआ हूं। आशा है आप उसपर [illegible] विचार करेंगे।
संसार में प्रत्येक को विवाह करना आवश्यक माना गया है - यदि [illegible] [illegible] - तो [illegible] होना [illegible] - और [illegible] के [illegible] [illegible] पड़ जाय। इसी लिए प्रत्येक [illegible] विवाह करना आवश्यक समझता है। अब कोई [illegible] [illegible] कि जैन धर्म [illegible] विवाह [illegible] क्या [illegible] है और हम उसपर कहां तक पहुंचे हैं -

[illegible] विवाह का उद्देश्य [illegible] [illegible] माना है - और इसी लिए [illegible] कि यदि [illegible] विवाह करे - [illegible] अपनी पत्नी [illegible] - तो वह [illegible] [illegible] होता है - [illegible] [illegible] नहीं होती है, इत्यादि। और [illegible] - [illegible] आधीन [illegible] है इत्यादि।

परन्तु जैन धर्म इस विषय में कुछ भिन्न [illegible] है - उसका मूल उद्देश्य - संसार बन्धन [illegible] होना - [illegible] और इसी लिए उसने [illegible] [illegible] ब्रह्मचर्य [illegible] को [illegible] है। [illegible] [illegible] विराग [illegible] [illegible] है। परन्तु जो मनुष्य [illegible] [illegible] नहीं [illegible] है - [illegible] [illegible] है - उसी के लिये जैन धर्म ने - आचार्यों ने - [illegible] धर्मानुकूल आचरण करते हुए जीवन [illegible] की आज्ञा दी है - और इसी लिए [illegible] [illegible] - अपने [illegible] धर्मानुकूल या धर्मविरुद्ध [illegible] आवश्यक माना गया है। अतएव जैन लोगों का [illegible] है "कि विवाह [illegible] [illegible] - [illegible] धर्म [illegible] की कोई आवश्यकता नहीं" तो इसको तो [illegible] [illegible] मानता है - कि - जब जैन धर्म का मूल उद्देश्य संसार-बंधन मुक्त होना माना गया है तो [illegible] [illegible] विषयों [illegible] प्रवृत्ति करने को जैन धर्म की आज्ञा मानी जाय!

परन्तु [illegible] [illegible] नहीं हो सकता है कि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] उद्देश्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

क्योंकि मैं पहले ही बतला चुका हूं। कि मानव का [illegible]
ही आवश्यक नहीं है, जो [illegible] कर्म [illegible]
रहे — और मुनियों के बीच [illegible] अपना मूल उद्देश्य
माने। अत: मैं अब विवाह [illegible] उद्देश्य [illegible] इतिहास
[illegible] से [illegible]
लोगों को अनुभव कराता हूं।

शास्त्र की आज्ञा है — कि

पतिव्रता स्त्रियां [illegible] कुलीन हों।

देवता [illegible] नहीं [illegible]
[illegible] परम्परा [illegible] चली आवे — उसमें कोई [illegible]
[illegible] हो, [illegible] की ओर [illegible]
हो, देवता [illegible] रहें — [illegible]
[illegible] इन बातों को [illegible] [illegible] विवाह
[illegible] [illegible] आदि [illegible]
अब जिन लोगों ने [illegible] विवाह का उद्देश्य [illegible]
है — [illegible] विषय [illegible] को [illegible] माना है — मेरा —
उन लोगों से पूछना है — कि क्या आप [illegible]
[illegible] पर चल रहे हैं — ? या उसका [illegible] है ?

यदि आप कहें कि हम क्या [illegible] पर नहीं [illegible]
तो आप में [illegible] कि इसका मतलब यह भी हो सकता है
कि हम उस मूल उद्देश्य को रखकर अपना ही [illegible]
मान लें और अपना आचार-विचार गिराते जावें।

यद्यपि [illegible] शंका यह खड़ी होती है। कि जब विवाह
का उद्देश्य उपरि [illegible] यह माना गया है — तो पूर्वकाल
में एक [illegible] बहु विवाह क्यों होते थे ? क्या [illegible]
धार्मिक-कार्य नहीं हो सकते थे ? इसी प्रकार [illegible]
जाने पर [illegible] पुत्रों के धार्मिक कार्य [illegible] चले जाते [illegible]
[illegible] हो इसलिए पुत्रों का [illegible] है [illegible]
[illegible] के [illegible] धार्मिक [illegible]
[illegible] इसलिए [illegible] हो [illegible]
[illegible] इसलिए ~~[illegible]~~
~~[illegible]~~ और इन्हीं सब बातों पर इसलिये मैं अब विचार किया
जाता है।

आदि ग्रन्थों के देखने से पता चलता है - कि सत्य युग के प्रारंभ में योगभूमि थी, एक माता-पिता के उदर से, जन्म लेते ही युगल संतान ही उत्पन्न होती थी - और [illegible] उनके माता-पिता [illegible] हो जाते थे परन्तु ज्यों ही योगभूमि [illegible] होने लगा - ~~और~~ उसी समय ही तात्कालिक पुरुषों के जीवित रहते हुए उनके संतान होने लगी - वे अपनी संतान का मुख देखकर [illegible] हुए - परन्तु तत्कालीन कुल-करों ने उनका भय दूर करते हुए उनके पालन-पोषण की शिक्षा दी और उनके प्रेम करने [illegible]। धीरे धीरे योगभूमि [illegible] नष्ट होने ही - कल्पवृक्ष विलुप्त हो गए, वह स्थायी सुख [illegible] [illegible] अदृश्य हो गया - और [illegible] ही [illegible] मनुष्यों के संतान भी अधिक होने लगी - ऐसे समय में ही [illegible] ब्रह्मा का अवतार हुआ - प्रजा को [illegible] और कल्याण का [illegible] दृश्य दिखाई देने लगे - तब प्रजा के [illegible] हुआ - कि अब क्या [illegible] [illegible] एवं हम पुनः आपत्ति [illegible] | यह विचार कर प्रजा आगे प्रजापति - नाभिराय [illegible] आदि ब्रह्मा के पास पहुँचे और सब दुःख निवेदन किया - श्री आदि ब्रह्मा ने [illegible] [illegible] - प्रभु के आदेश [illegible] और [illegible] देकर - उनको अपनी आजीविका [illegible] प्रारम्भ हुआ [illegible] | इस प्रकार [illegible] तब [illegible] जब आदि [illegible] चिन्ता हुई और [illegible] राम को उनके विवाह करने की चिन्ता हुई [illegible] पहुँचे। [illegible] मन में [illegible] और उनकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा कि -

1 - तत: [illegible] मनोद्यं [illegible] मन: कुरु।
प्रजासंतति [illegible] ॥
2 - प्रजो [illegible] तत्र धर्म [illegible]:
मनुष्य [illegible] धर्म [illegible] ॥
3 - [illegible] धर्म [illegible] ।
संतान [illegible] ॥

अर्थात - ~~आप~~ मैं जानता हूं - कि आप संसार के [illegible] आदि [illegible] उदासीन हैं लेकिन [illegible] जब तक [illegible] [illegible] आया है - [illegible] आप [illegible]

क्योंकि ऐसा करने से ही चिरस्थायी, प्रजा के परस्पर का [illegible] होगा। और प्रजा की सन्तति के अविच्छिन्न होने पर ही धर्म एवं परमार्थ संसार में आगामी कल चल सकेगा। अतः हे देव, पर विचार करना मानव धर्म है- और इसे आप भी कर लीजिए। और
हे देव, [illegible] को [illegible] आदि [illegible] आपको स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि - आर्ष वचन है। कि - [illegible] की सन्तान [illegible] इत्यादि-
इस प्रकार राज्य के आरम्भ में नवप्रवर्त्तक नाभिराज ने विवाह का उद्देश्य बतलाते हुए विवाह की प्रणाली की जिसे श्री ऋषभदेव ने "ओम्" कहकर स्वीकार किया। धीरे धीरे, [illegible] राज्य [illegible] गया, प्रजा अपने अपने आजीविका के साधनों में तत्पर हो सब सुविधा सम्पन्न होगई। इसी समय जब सन्तान की उत्पत्ति हुई तो इसकी तादाद में ~~[illegible]~~ होने लगी - तब प्रकार के भिन्न भिन्न प्रकार की आजीविका होने वाली - व भिन्न भिन्न वर्ण वाली प्रजा में वर्ण सांकर्य न हो जावे - इस लक्ष्य को सामने रखकर - श्री आदिप्रभु ने आदेश दिया - कि

शूद्र, अपनी जाति वालों के साथ विवाह करें उन्हें अन्य वर्ण [illegible] साथ विवाह का अधिकार नहीं। इसी प्रकार वैश्य वर्ण [illegible] साथ विवाह का अधिकार नहीं। इसी प्रकार वैश्य वर्ण वालों को शूद्र वर्ण वालों के साथ विवाह करने का अधिकार नहीं। अन्तः ब्राह्मण क्षत्रिय के साथ विवाह करने का अधिकार नहीं। क्षत्रियवर्णी वाले अपने वर्ण में व वैश्य शूद्रों की कन्याओं के साथ विवाह सम्बन्ध करें। और ब्राह्मण लोग अपने ही वर्ण में ही विवाह सम्बन्ध करें। ~~वे अन्य [illegible] वर्णों के साथ भी विवाह [illegible] का अधिकार~~ - कदाचित किसी विशेष अवस्था में सभी औचित्य को देखकर अन्य वर्ण वालों के साथ भी विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं इत्यादि।
इस प्रकार आर्ष-ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि [illegible] विवाह के दो कारण मुख्य थे —
एक तो - अपने वर्ण के सिवाय अन्य वर्ण वालों के साथ विवाह करने की आज्ञा या अधिकार। और दूसरा स्त्री जाति की अधिक संख्या में उत्पत्ति। गौणरूप से शरीर-शक्ति का [illegible]

## २ बहुविवाह के कारणों पर विचार

जिस समय — तीर्थंकर ऋषभदेव के समय में, इस बहुविवाह की प्रथा प्रारम्भ हुई
थी — उस समय जन संख्या बहुत कम थी, भोगभूमि के प्रत्येक दम्पति से
एक युगल उत्पन्न होता [illegible] नियम मिट चुका था — मनुष्यों की आयु
भोगभूमि की अपेक्षा बहुत कम रह गयी थी ~~[illegible]~~ लाख की भांति —
संसार-निर्वाह व जीवन निर्वाह का प्रश्न सामने आ खड़ा हुआ
था — और न वह सुख की बात, जो भोगभूमि के समय में थी, था —
[illegible] थी; या यों कहना चाहिए कि जिस बात से भोगभूमि में
समझते [illegible] नहीं थे वह भी — [illegible] की बात,
वह भी, बन्ध-मोक्ष की बातें, [illegible], दान-पुण्य की बातें।
या यों कहना चाहिए, कि [illegible] मनुष्यों के तो बहुत [illegible] —
[illegible] आगामी का, इसे [illegible] धारण [illegible]
जानी ही पड़ी थी। —— ऐसे समय में, जब कि मनुष्यों को
शान्ति पूर्वक, निरुपद्रव जीवन निर्वाह होते हुए, आगामी धर्म सन्तति
के क्रम बढ़ चला है, इस अपने आत्म कल्याण या आत्मोद्धार
का प्रश्न सामने खड़ा था, — [illegible] तब मैं ही आपसे पूछता हूं कि —
तात्कालिक मनुष्य यदि बहु विवाह न करते, तो क्या करते —
जिससे धर्म की परम्परा बराबर चली जाती व मार्ग बराबर
अक्षुण्ण बना रहता। और यही मुख्य कारण था — कि जिससे
[illegible] ऋषभदेव जी आदि ने [illegible] विवाह कराये [illegible]
[illegible] — उसका उपदेश दिया, और उसके [illegible]
[illegible] की बाधा नहीं बतलाई। यह तो हुआ बहुविवाह
की उत्पत्ति पर विचार। अब [illegible] है उसके [illegible]
[illegible] बहुविवाह की प्रथा बहुत [illegible]
है, कि उस समय बहुविवाह [illegible] होता तो — ऐसे महर्षियों
तीर्थंकर यदि यह प्रथा [illegible] होती तो [illegible] निषेध किया होता
या तीर्थंकरों ने अपने [illegible] इस बहुविवाह की प्रथा का भी निषेध
[illegible] इस बहुविवाह [illegible] नहीं [illegible]
[illegible] / लेकिन ऐसा [illegible] कि [illegible] बहुविवाह [illegible]
है — अतः स्पष्ट सिद्ध है कि उस समय बहुविवाह [illegible]
[illegible] नहीं ~~था~~ किन्तु [illegible]
न [illegible] था।

लाभों पर : ———

आर्ष-ग्रन्थों में, स्थान स्थान पर इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पूर्वजमाने में लोग उत्तम तन्दुरुस्ती वाले, बलिष्ठ, अखंड-वीर्य वाले, ~~अ~~ पूर्णआयु वाले ~~अकालम~~ और निरोग-शरीर थे। यही मुख्य कारण था कि- एक पुरुष के दो-चार, दो-तीन बच्चे होने - हजारों विकार होने पर भी उनके क्षीण वीर्य नहीं होते थे, रोगग्रस्त और अल्पायु नहीं होते थे - और इन्हीं सब कारणों से प्रायः मनुष्यों की अकाल मृत्युएँ नहीं होती थी — जिससे कि एक मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर हजारों स्त्रियों को वैधव्य जीवन का दुःख भोगना पड़ता। यदि ऐसा न होता, कितने असमय हजारों नारियों के लाखों की अकाल मृत्यु हो जाती - और हजारों स्त्रियों को वैधव्य जीवन दुःख भोगना पड़ता - तो इनकी इसी वृद्धि विकास की प्रक्रिया ही बन्द हो जाती। परन्तु इस तरह के उदाहरण [illegible] प्रतिमाह कोई - अनेक बहुतायत मिलते हैं, या - रोज कहीं न कहीं मिलते हैं। और सतीत्वावलम्बियों की भी अकाल मृत्यु होती थी, वह भी अपना आयु पूरी करके ही मृत्यु होती थी - सिर्फ यह तो एक निर्धारित है कि [illegible] तथा से मृत्यु होना यदि आपलोगों के उन मृत्यु होने वाला इनके ने अकाल मृत्यु कहा है - आज जिसे लोग का पूर्ण आयु कर मरना होना कैसे कह सकते हैं - तो और निवेदन है कि यदि ~~प्रा~~तिनारायणों की आयुपूर्ण होती तो तो शास्त्रों में ~~चि~~ जो प्रत्येक ~~प्रत्येक~~ प्राणी की [illegible] आयु

कहते हैं - वह भैंस उनको लड़का है। यदि आप कहें - मिलावट है तब
आचार्य की अकाल मृत्यु हो जाती [illegible] — उनके लिए आवश्यक है कि दुराचार
योग की आवश्यक है लेकिन है। [illegible] नियोग से ही सन्तान उत्पन्न -
करने का विचार किया गया है। यहाँ यह विदित प्रतीत है [illegible] और
[illegible] में भावनी का [illegible] होती है
और इसलिए [illegible] की आयु [illegible] में बिलकुल -
[illegible] जाता है, [illegible] के [illegible]
जाते हैं। [illegible] द्वारा उनकी [illegible] है - और इस [illegible]
[illegible] द्वारा उनकी अकाल मृत्यु होना लिखा है। इन बातों से स्पष्ट
ज्ञात होता है कि [illegible] को [illegible] में ही
[illegible] होती थी। और [illegible] में ही [illegible]
[illegible] हो जाती थी। उनके [illegible] ~~[illegible]~~
में हो जाती थी। जिससे यदि कोई [illegible]
[illegible] शान्तिपूर्वक [illegible] अपना जीवन
[illegible] की [illegible]
बिताती थी। इसलिए [illegible]
तरह [illegible] नहीं थी। यदि [illegible]
दूसरे [illegible] में — एक ~~[illegible]~~ [illegible]
आपस में उनका [illegible] होता था - वे [illegible]
[illegible] में भी [illegible] रखती थी। [illegible]
[illegible] होता था - [illegible]
[illegible] करती थी।
[illegible] - कि प्रति [illegible]
[illegible] में इतने [illegible] आ जाते
यदि [illegible] दे सकती थी - जैसा कि [illegible] -
तो उनको [illegible] से विदित होता है। और [illegible]
[illegible] का [illegible] एक गाँव
का [illegible] - कि [illegible]
में पहुँच जाता था - तो [illegible] गाँव के [illegible]
[illegible] कर सकती थी। इन सब बातों से [illegible]
[illegible] है, कि [illegible] तो - [illegible]
तीसरे यदि [illegible]
का [illegible] लिखा
[illegible] है
होगा। लेकिन [illegible] कि [illegible]
है - अतः स्पष्ट सिद्ध है कि [illegible]
तरह [illegible] नहीं ~~[illegible]~~ किन्तु [illegible]
न [illegible] था।

किन्तु, आजकल की वर्तमान परिस्थिति पर विचार करते हुए यह बहुविवाह [illegible] हानिकारक है - क्योंकि - प्रथम तो इस प्रकार से स्त्री समाज की संख्या ही कम हो गई है। दूसरे मनुष्य, अल्पायु, रोगग्रस्त, क्षीणवीर्य वाले होते हैं - ऐसी परिस्थिति में यदि पुरुषों द्वारा बहु विवाह [illegible] किये जाते हैं - तो स्त्री समाज के साथ अन्याय हुआ - उनके द्वारा [illegible] उत्पन्न है - और उनको निर्बल बनाकर [illegible] से अनुचित व्यभिचार कराना है। दूसरे उन पुरुषों के साथ अन्याय होता है - जो स्वस्थ नीरोग शरीर, नवयुवक होते हुए भी कन्या के अभाव में तड़पते रहते हैं - ऐसी परिस्थिति में पुरुषों को बहुविवाह का होना ~~[illegible]~~ बहुत ही हानिकारक है - / [illegible]

दूसरे - जब आजकल पति-पत्नी दोनों में भी आपस में प्रेम नहीं रह सकता है, तो एक से अधिक होने पर, उनमें परस्पर तो फिर पूछना ही क्या है - [illegible] जहाँ तक देखा है [illegible] किसी मनुष्य की स्त्रियाँ हैं - तो वे दोनों ही आपस में एक दूसरे को विषदृष्टि से देखा करते हैं। और (प्रायः) यह भी देखा जाता है कि - बेचारा पति भी ~~[illegible]~~ उन दोनों के बीच पिसता हुआ कदाचित् उनके ही द्वारा काल-कवलित हो जाता है। और इस प्रकार से बहु विवाह आजकल कभी कामयाब नहीं रह सकता है।

तीसरे - आजकल मनुष्य, जिनको ब्रह्मचर्य [illegible] हुए - उनमें भी जैन समाज में उत्पन्न हुए मनुष्य प्रायः [illegible] क्षीण वीर्य वाले होते हैं। होवें क्यों न, जबकि उनके माता पिता ही क्षीणवीर्य वाले, रोगग्रस्त और अनेक औषधि सेवन से खोखले शरीर वाले होते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य नियम से आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त होते हैं - वीर्य का क्षीण होना ही आयु का [illegible] है। इससे बहुविवाह करने पर - नियम से स्त्रियाँ प्रायः विधवा हो जाती हैं। फिर इतने से ही कुशल नहीं है - हम आपसे यह पूछते हैं कि मनुष्य - अपनी विषय वासना पूर्ण करने के लिए वे बेचारी विधवायें और [illegible] व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाती हैं और उनके गर्भ [illegible] निन्द्य व अत्याचार पूर्ण [illegible] हो जाते हैं। आज ऐसे [illegible] ऐसे स्थान मौजूद हैं - जहाँ बेचारी विधवायें घर या कुटुम्बियों [illegible] द्वारा [illegible] जाती हैं - और [illegible] धर्म मार्ग का [illegible] होकर [illegible] अधर्म व अन्याय का प्रचार होते हैं

यदि आज [illegible] समाज [illegible] — हम लोगों [illegible] होते हैं, [illegible] का विचार करते होते — हम [illegible] [illegible] नहीं देते, हम विधवाओं के साथ बलात्कार [illegible] उनका [illegible] नहीं करते, उनको [illegible] शिक्षा का [illegible] करते, तो [illegible] [illegible] जो सर्व-अवस्था में [illegible] आधीन है — [illegible] [illegible] चलतीं — [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। और तो [illegible] — बेचारी विधवायें तो [illegible] समाज के [illegible] से [illegible] गर्भपात करती हैं — और [illegible] [illegible] की इच्छा के [illegible] से गर्भगिराने को तैयार नहीं होती हैं। उनके [illegible] का [illegible] गर्भगिराने के लिए [illegible] किया जाता है — इससे हम विधवायें [illegible] करें या नर-पिशाचों के [illegible]। [illegible] [illegible] का [illegible] करें — यदि आज हम, [illegible] समाज ही — हमलोग ही, [illegible] — यदि आज हम, [illegible] [illegible] धार्मिक शिक्षा देते — उनके जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध करते, उनको [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समझते होते तो [illegible] आज, [illegible] देखने को मिलती — जो दुखियां के नेत्रों पर आंसुओं की धारा बहा रही है। [illegible] [illegible] और टुकड़े टुकड़े कर रही है।

अफसोस इतना सब देखते और [illegible] हम आनन्द [illegible] रहे हैं — और [illegible] को दुखिया में [illegible] धर्मात्मा [illegible] रहते हैं और [illegible] [illegible] [illegible] रहते हैं।

इसलिए बहुविवाह किसी तरह वर्तमान में [illegible] नहीं है।

## ✓ पुरुष के पुनर्विवाह पर विचार

लोग, अधिकतर पुरुष के बहुविवाह और पुनर्विवाह को एक समझ करते हैं — लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह या अनेक विवाह [illegible] उसको बहुविवाह कहते हैं और जो एक स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह किया जाता है उसको पुरुष पुनर्विवाह कहते हैं। [illegible] दोनों में [illegible] भेद है।

पुरुष के बहुविवाह पर तो विचार हो चुके, अब विचार करना है — पुनर्विवाह पर। [illegible] प्रत्येक विचार [illegible] पद्धति से किया जाता है, एक लौकिक पद्धति, और दूसरी धार्मिक पद्धति। इसलिए इसका भी विचार [illegible] ही पद्धतियों से करते हैं।

लौकिक कार्य वही कहे जाते हैं, जहां तक उनके करने से [illegible] लाभ है, न करने से कोई दूषण नहीं है। इसी प्रकार धार्मिक कार्य भी वही तक और वे ही सिद्ध माने जाते हैं - जो आत्मकल्याण या आत्मोन्नति के साधन [illegible] तथा जो ध्यान के करने वाले हों, जिनके करते हुए निर्मल [illegible] के द्वारा मोक्ष के कारण हों, अतः जो वीतराग सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित है, जिसे गणधरों ने, महर्षियों ने उपदेश किया है, वही ही सत्य मार्ग है, वही मोक्ष का उपदेश देने वाला या संसार दुःख का नाश करने वाला है - और उसी की ही पद्धति, धार्मिक पद्धति कही जा सकती है। अब विचार यह है कि विवाह लौकिक कार्य की श्रेणी में है - या धार्मिक कार्य की श्रेणी में - जिससे उसी की पद्धति द्वारा विचार किया जा सके। इस विषय में यद्यपि विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं, परन्तु मैं बहुत ऊहापोह के बाद मुझे जो अनुभव हुआ है, या मैं जिस विचार पर पहुंचा हूं, वह आप के सामने रखता हूं। वह यह है कि आदि पुराण जी, विवाह के विषय में यह आया है - कि प्रजा सन्तति के उत्पन्न होने से ही धर्म की सन्तान-परम्परा चल सकती है - यदि प्रजा की सन्तति का ही विनाश हो जाय, तो धर्म-परम्परा चलाने वाला [illegible] संसार में कौन रहेगा - अतः धर्म परम्परा के चलाने के कारण विवाह करना और सन्तान वैध रखना आवश्यक है - और यही गृहस्थ-धार्मिक [illegible]

इसी प्रकार सागार धर्मामृत में कहा है - कि धर्म सन्तति क्रम बढ़ती जावे, [illegible] अपने चारित्र और कुल की उन्नति हो, और देव, द्विज, अतिथि का सत्कार बराबर होता रहे - अतः [illegible] विवाह करे - इन वाक्यों [illegible] से पता चलता है। इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि विवाह धर्म [illegible] व धर्म परम्परा की सन्तति [illegible] मुख्य कारण है - इसलिए कारण में कार्य का उपचार कर विवाह को यदि धार्मिक कार्य माना जाय, तो कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। अथवा इसलिए [illegible] जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं। और [illegible] का कारण होने से, जैन धर्म का [illegible] वीतरागता [illegible] है। [illegible] सन्तान पद्धति का कारण होने से यह धर्म मार्ग [illegible] नहीं कहा जा सकता इसलिए इसे लौकिक कार्य मानना पड़ेगा। और यही उपदेश [illegible] महर्षियों ने भी दिया है। अतः इसका विचार [illegible] पद्धति को देखना आवश्यक है।

**1930C Issues of social concern B**

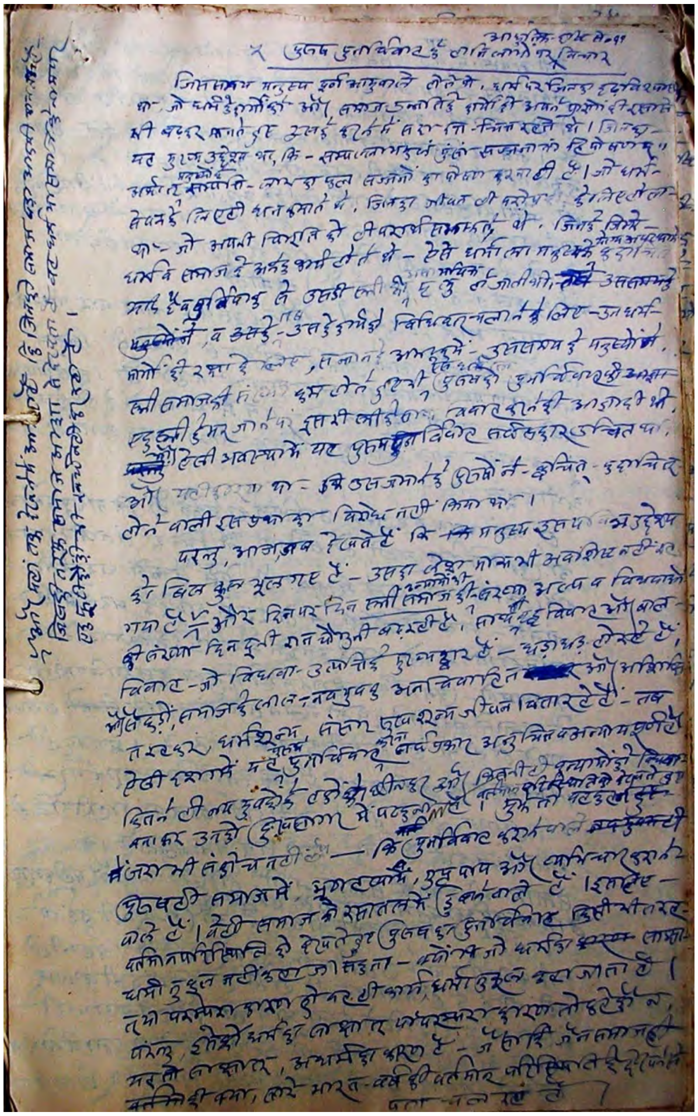

ऐसी अवस्था में, यह (अब) पुरुष का पुनर्विवाह धर्मानुकूल नहीं है, न लोकानुकूल — लोकानुकूल ही समझा जा सकता भी नहीं हो सकता। क्योंकि इसके होने से जैन समाज की अवनति का संरक्षण भी विपरीत हो रहा है। जब यह पुरुष पुनर्विवाह धर्मानुकूल न लोकानुकूल — समाजानुकूल नहीं है तब किसी तरह होने योग्य भी नहीं है।

हाँ, जैसी परिस्थिति में आदि हो गई थी आज्ञा सर्वज्ञ भगवान ने दी थी, यदि कदाचित्, कभी आज भी वैसी ही अवस्था [illegible] उपस्थित हो — तो केवल एक पुनर्विवाह होने की आज्ञा समाज को देना — धर्मानुकूल कहा जा सकता है।

परन्तु आज, एक नहीं दो-दो तीन, कुछ लोग चार-चार, पांच-पांच विवाह केवल (अब) वासना पूर्ति के उद्देश्य से हो रहे हैं, जिसमें धर्माचरण या धर्म मर्यादा का लेश मात्र भी नहीं है। इसके विपरीत सर्व प्रकार अधर्म का द्वार है — तब मैं आप लोगों से ही पूछता हूँ कि क्या आज, (बहु) पुरुष पुनर्विवाह होना न्याय संगत है या धर्मानुकूल है?

हाँ, यहाँ आप यह प्रश्न उपस्थित कर सकते हैं कि यदि पुरुषों का पुनर्विवाह नहीं हो सकेगा — तो जिनकी संतान पैदा न होने की अकाल मृत्यु हो चुकी है — ऐसे सैकड़ों घराने बैठ जायेंगे — नष्ट हो जायेंगे — तो इसके जवाब में बस — तो इसके उत्तर में मेरा नम्र निवेदन है कि

१ — प्रथम तो — पुनर्विवाह करने वाले मनुष्य, दूसरी विवाहिता से सन्तानोत्पत्ति होगी यह ही चल सकते हैं — यदि सन्तान प्राप्ति हो सकती है — तो मुश्किल से १-२-३। शायद ही किसी मनुष्य के अधिक उम्र में पुनर्विवाह करने पर ४-५ संतान हुई हों। यदि इसी बात पर गहरी दृष्टि से अवलोकन करते हैं — तो — यही तथ्य पता चलता है कि — वह संतान भी यथार्थ संतान नहीं [illegible]। और यदि कदाचित् दूसरे पत्नी से असली भी सन्तान और १-२ भी हुई तो — भी क्या होगा — उसने क्या उद्धार कर दिया। वह भी तो नहीं होते हैं, ही बराबर ही होते हैं। यदि इसी बात पर दृष्टि से देखा जाय तो और भी बड़ा भारी धोखा यह है। [illegible] आता है कि — जो कन्या वह दे या पुनर्विवाहित पुरुष से विवाही [illegible] जा कर १-या २ संतान

पैदा करती है - यदि वही कन्या किसी नवयुवक से विवाह दी जावे - तो आप ही बतलाइये कि कितनी [illegible] देने पड़ेंगे तो, जो [illegible] नहीं [illegible] सन्तान पैदा कर सकती है। इस तरह भी पुनर्विवाह है [illegible] न्याय संगत नहीं है।

(हाशिये पर: माइयों / आर्थिक सन्तान)

तीसरे - जब [illegible] छोटे हुए २-२ या ४-४ विवाह करा कर १०-५ का जोड़े से घर आबाद किया जाते [illegible] नहीं जाती है - तब मैं पूछ लेता हूँ - कि यदि वे [illegible] नवयुवकों के विवाह हो जावें, तो २-२ [illegible] सैकड़ों घर, प्रतिवर्ष, नये आबाद होंगे।

चौथे - वर्तमान में - कन्याओं की संख्या घटती जाती है हमारे यदि उनकी संख्या काफी होती, तो उसमें पुनर्विवाह होते हुए भी कोई नुकसान नहीं था - परन्तु आज तो इसके बिलकुल विपरीत अवस्था है अतः [illegible] भी है इस लिए भी पुनर्विवाह कुल न्याय संगत नहीं कहा जा सकता।

यदि आप कहें - कि पहिले भी - तो इस जमाने में स्त्रियों के बहु विवाह या पुनर्विवाह होते थे - तो इसके उत्तर में कहूं - कि जब कन्याओं की संख्या बहुत अधिक थी तब यदि बहु विवाह या पुनर्विवाह न होते तो क्या होता - लोग कन्याओं [illegible] - क्या उनको पकड़ कर गंगा जमुना की धार में बहा देते या समुद्र में फेंक आते।

विवाह आदि कार्य - अवस्थानुसार, सदा धर्मानुकूल - ही घटा बढ़ा करते हैं - जैसा कि विवाह के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न देशों की रीति रिवाजों के देखने से पता चलता है। [illegible] प्रमाण है। क्योंकि यह कहा है कि विवाह के जो [illegible] धर्म [illegible] बताये गये हैं - [illegible] की विवाहों की प्रथा एक समय नहीं चली थी किन्तु किसी समय आर्ष विवाह की तो किसी समय ब्राह्म विवाह की। यदि इन्हीं [illegible] एक समय चली होती तो - जैसे एक मुनि को [illegible] एक समय स्वीकार करना पड़ता है जो [illegible] प्रकार का [illegible] एक [illegible] और एक [illegible] आपद पर [illegible] पड़ते हैं - और इनका मूल [illegible] एक [illegible] विधान मिलता है - जैसे [illegible] जाति गांवों में [illegible]

(हाशिये पर: ब्राह्म विवाह, आर्ष विवाह, प्राजापत्य विवाह और दैव विवाह)

तीर्थंकर आदिनाथ भगवान विवाह की व्यवस्था करते तो वे इन सबों का भी उपदेश देते।

दूसरा प्रमाण — कि जब भरत आदि कुलकर ने विवाह व्यवस्था कायम करते हुए भी स्वयं कर स्त्रियों का विधान का जिक्र नहीं किया — और उनके पीछे भी अकंपन ने उसकी प्रवृत्ति चलाई और स्वयं उसके नेता बने।

इससे मालूम होता है कि यावत् लौकिक कार्यों में जहां भी घट बढ़ हुआ करती है — परन्तु उन सबों धर्म कुल ता मुख्य में, सर्वप्रथम दे दी जाती है। जिसके कौतुक सम्पत्ति में बढ़ा का बातों में दूषण नहीं आता वे सभी बातें प्रमाण मानी जाती हैं।

बहुत से महाशय मेरी इस विवाह व्यवस्थाई पद्धति पर विरोध की दृष्टि से विचार करेंगे — परन्तु मैं इस बात को किसी अन्य पक्ष से आगम प्रमाण से सिद्ध करूंगा — कि करणानुयोग की कई व्यवस्थायें ऐसी हैं जो देश व काल के अनुसार परिवर्तित की जा सकती हैं — हां, उनका मूल उद्देश्य सर्व अवस्था में एक ही रहता है।

यहां आप लोगों को यह बात बता देना भी आवश्यक समझता हूं कि चौथे काल में पुनर्विवाह नहीं होते थे — क्योंकि जिस उद्देश्य से पुरुष पुनर्विवाह का विधान किया गया है — वह प्रथा चलाई गई है — यह बहु विवाह के होते हुए भी सांगत ही नहीं था बहु और पुनर्विवाह में समाज पहले ही दिखला दिया जा चुका है — अब इस बात को भी बतलाता हूं — कि पुराने जमाने की दृष्टि से बहु विवाह की अपेक्षा पुरुष पुनर्विवाह बहुत कम होता था।

जहां तक मेरा अनुभव है और जैसा शास्त्रों में खोज करने से पता लगता है — कि इस समय में किसी भी महापुरुष के एक स्त्री के मरने पर फिर पुनर्विवाह नहीं हुआ है। यदि कोई महाशय मेरी इस धारणा को — आगम प्रमाण द्वारा या किसी के पुनर्विवाह होने का कथन गलत सिद्ध कर देंगे — तो मैं खुशी से अपने शब्द वापस ले लूंगा।

इस तरह यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि चतुर्थ काल में पुरुष पुनर्विवाह प्रचलित नहीं होते थे, किन्तु पीछे पीछे जिस उद्देश्य को लेकर इस प्रथा का प्रारम्भ हुआ तो मैं आगे बतलाऊंगा — इससे — बहु विवाह की प्रथा न चलती होने से पुरुष पुनर्विवाह की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

अब तो इस प्रकार का इतना दुरुपयोग हुआ - कि आज का पुरुष जाति समाज अधःपतन की चरम सीमा पर पहुंच चुकी है - और जिनके [illegible] जैनधर्म व जैनशासन दिन पर दिन रसातल को जा रहा है। इसी प्रकार धार्मिक अन्याय इनके प्रचार का इनके हृदय पर इतना बुरा असर पड़ा है - जिससे [illegible] हम स्त्री को पैर की जूती समझने लगे हैं, उनको पैरों से ठुकराने लगे हैं। जिन स्त्रियों को आचार्यों ने - "धर्मार्थकाम की देवी - केवल एक पतिव्रता" अर्थात् पतिव्रता स्त्रियां धर्म, लक्ष्मी, पुत्र, और कीर्ति की अद्वितीय घर है। इस तरह - इतना ऊंचा माना है, जो स्त्रियां ही तीर्थंकरों की जननियां और मनुष्य जाति की [illegible] हैं, जो स्त्रियां हमारे [illegible] कार्यों का सर्वस्व [illegible] कर अनेक दुःख सहन करती हुई हमारी सेवा में सदा तत्पर रहती हैं —— और यहां तक कि हमारी [illegible] के बाद भी, सारे जीवन, हमारे नाम की माला फेरती हुई, अनेक कष्ट सहन करती हुई, यहां तक कि और दिन भर हमारे कामों करने पर, अनेकों शील खण्डन के अवसर आने पर भी [illegible] नहीं चूकती — इसके विपरीत हमारे ये दुष्कृत्य, - कि हम जितनी [illegible] करें - [illegible] लेते हैं कि कब ये चुड़ैल मरे - और दूसरी शादी करें। इन सब कुकृत्यों को - तिरस्कारपूर्ण पाप की दृष्टि से देखते हैं। हम पुरुष समाज का अन्याय नहीं कहें, तो, क्या कहें?

मेरी पुरुष समाज के अन्याय देखते हुए हमको किसी विद्वान के ये शब्द याद आजाते हैं कि " समाज की व्यवस्था पुरुष समाज के हाथों रही इसलिए उसने अपने संरक्षक [illegible] - यदि यही शासन व्यवस्था स्त्री [illegible] के हाथ में रहती तो वह भी अपने पुरुषों के [illegible] मार्ग खोल देती - और वर्तमान समय में जो परिस्थिति स्त्रियों की है - वह पुरुष समाज की होती "। वास्तव में इन शब्दों पर विचार करते हुए और प्राचीन - आर्ष शासन पद्धति से वर्तमान [illegible] शासन पद्धति की तुलना करने पर यह बात सहज में प्रगट हो जाती है कि यह सब पुरुष समाज का अन्याय है - जो स्वयं पतित होकर अन्य धर्म - [illegible] करते हुए परस्पर [illegible] स्थित [illegible] है - जिनको [illegible] कर रहे हैं। [illegible] अच्छी से अच्छी [illegible] परस्पर विचार देखते हुए [illegible] में पैदा हो जाते हैं - [illegible] के विचार [illegible] विचार है - कि हमारे [illegible] एक पत्नी व्रत का विधान [illegible] पुरुषों के लिए एक पत्नी व्रत का [illegible] क्योंकि आचार्यों ने तो [illegible] का विधान किया है। (——

उन्होंने तो कुछ भी इस विषय में नहीं कहा है।
जैन विचार कहते हैं आत्म कल्याणी जो जो प्रतिज्ञा जन्म पर्यन्त की जाती है वैसी ही प्रतिज्ञा [illegible] पुरुषों के लिए भी की जाती है ... [illegible] नहीं होता — [illegible] आवश्यक आता है — [illegible] खुला नहीं निकलती। [illegible] है कि अपने लिए खुला [illegible] अन्याय और [illegible] अपरिहार्य होता है।

यदि आज हम भी स्त्री समाज के लिए [illegible] बहुतेरे तो हमारे हृदय में भी स्त्री समाज के प्रति आदर होता, हम उनको हृदय वासिनी देवी मानते। [illegible] [illegible] हृदय वासिनी [illegible] कि — [illegible] शास्त्रीय वचन भी चरितार्थ देखा जाता कि — यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता। अर्थात् जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता भी रमण करते हैं।

जब एक दूसरे के प्रति घृणा भाव [illegible] बुद्धि बैठी हुई है तब [illegible] [illegible] हुए हैं। जहां दोनों ही [illegible] [illegible] है कि — [illegible] होती है — यहां आचार्यों ने यहां तक कह डाला है कि — [illegible] संसार [illegible]। अर्थात् — यदि [illegible] संसार [illegible] कहा जा सकता है।

अतः वर्तमान अवस्था को देखते हुए यह कहना पड़ता है कि — आजकल [illegible] पुनर्विवाह होना नितान्त अन्याय है। [illegible] पुनर्विवाह के कारण स्त्री समाज की [illegible] है। इसी [illegible] पुनर्विवाह के [illegible] हुए हैं। [illegible] यदि आज [illegible] समाज संयत होता तो यह [illegible] ही नहीं आता। यह [illegible] है [illegible] जा सकता है।

जिन लोगों का यह ख्याल है कि [illegible] पुनर्विवाह शास्त्र विहित हो [illegible] अन्याय व अधर्म है ऐसे लोगों के लिए [illegible] आगम [illegible] और [illegible] — जहां [illegible] प्रतिमा धारी के लिए लिखा है कि —

स्थूलं [illegible] न वदति, न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूल मृषावाद वैरमणम्॥ [illegible]

अर्थात् — [illegible] कि [illegible] [illegible] और ऐसे [illegible] दूसरों [illegible] से बुलवावे। इसका तात्पर्य यह — कि जिसके बोलने से [illegible] [illegible] — तो ऐसी [illegible] [illegible] [illegible] अन्याय का [illegible] जावे।

## असवर्ण विवाह पर विचार

असवर्ण विवाह की आलोचना हो चुकी। अब विचार है उसकी हानियों पर।

जिस समय पर असवर्ण विवाह की प्रथा संसार में चली था, इसके करने का उद्देश्य किया गया, उस समय, सब कोई ये भी जानते थे, कि सारा संसार सद्धर्मी था, लोग पाप पुण्य को समझते थे, उसी के अनुसार लोग अपना जीवन बनाते थे - और यही कारण था कि लोग पाप के नाम से ही घबराते थे, कि कोई ऐसा काम भी हो न जावे! और भारतवर्ष में तो यही बात आज तक विद्यमान है - कि लोग आज भी पाप के नाम से डरते हैं। ऐसी अवस्था में उस समय, एक बलवान धर्मात्मा मनुष्य - अपने कुल देश के हित - सब प्रकार पराक्रम से सब ही मनुष्यों को, यहाँ तक कि पहले विधर्मियों तक को भी सन्मार्गानुगामी बना देता था। यही कारण था - कि चाहे कोई भी धर्मविरुद्ध के ही इस जाति कन्याओं तक को विवाह कर स्वयं उन्हें आचरण को स्वीकार नहीं करते हुए - उनका कुल उन धर्मानुगामिनी बना देता था। इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि को भी अपने अपने विचार के अनुसार विवाह सम्बन्ध होते हुए भी सभी मनुष्य अपने अपने धर्म व वर्ण में स्थिर रहते हैं - एवं जो अपने से हीन वर्ण वालों की कन्यायें उच्च वर्ण वालों के साथ ब्याही जाती थीं - वे प्रायः सभी सहधर्मिणी बन जाती थीं। इसलिए उस समय पर असवर्ण विवाह सर्वप्रकार ठीक था।

इसके अतिरिक्त अपेक्षा यह [illegible] सम्बन्ध भी था। इस दृष्टि से भी इसका स्थान ऊँचा था।

इस विषय में जिन महाशयों का यह ख्याल है कि जब यह असवर्ण विवाह की प्रथा थी, उस समय इस दुरवस्था का सामना ब्राह्मण और क्षत्रियों को भी करना पड़ा होगा - क्योंकि ब्राह्मणों की कन्यायें पर वर्ण में जाती नहीं, और अन्य तीन वर्णों से उनमें चली जाती थीं - इधर शूद्रों को दूसरे वर्ण से कन्यायें मिलती तो थीं नहीं - उल्टी तीन वर्णों को देनी पड़ती थीं - इस कि - उनके सिर में घुसता है - कि यह कह सकना कि अपने वर्ण की कन्यायें छोड़ कर पहिले अन्य वर्णों की ही ली जावें। यदि अपने वर्ण की कन्यायें छोड़ कर पहिले अन्य वर्णों की ही ली जावें - तो आपका कहना ठीक था। ऐसा नियम किसी शास्त्र में आया होता - तो आपका कहना ठीक था, परन्तु यह कोई नीति तो ही नहीं।

असल में इसका मतलब यह था - कि यदि किसी उच्च वर्ण में कन्या कोई ऐसा रह जाती, या अविवाहित अधिक रहे - तो वे अपने से नीचे वर्ण वालों से लेकर भी विवाह सम्बन्ध कर अपने वंश की वृद्धि किया सकते हैं। क्योंकि उच्च वर्ण वालों की सन्तान और हीन वर्ण वालों की देखकर अधिक होती है। इसलिये उच्च वर्णों में सन्तान का कम पैदा होना स्वाभाविक है। जैसा आजकल

देखा जाता है कि जिस जाति की संख्या जितनी ही कम है उतनी ही अधिक तादाद में, उसमें कन्याओं की संख्या भी कम है। ~~और जितनी~~ ~~[illegible]~~ और इससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि जितनी छोटी संख्या में जाति होगी - उतनी ही विवाह-सम्बन्ध में अड़चन पैदा होगी। और इसी झंझट के दूर करने के लिए ही आजकल अन्तर्जातीय-विवाह का आन्दोलन उठाया जा रहा है। इससे यह कहा जाना कि - ब्राह्मणों को इस दुर्व्यवस्था का सामना बुरी तरह करना होगा - बिलकुल - अयुक्त है। क्योंकि वे अपने वर्ण में कन्याओं की कमी होने पर दूसरे वर्ण की कन्याएं स्वीकार करते थे।

इसी तरह शूद्रों को भी इस दुर्व्यवस्था का सामना बुरी तरह करना पड़ा होगा" कहना बिलकुल अयुक्त है - क्योंकि जब यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि शूद्रों की संख्या बहुत अधिक थी, और इसी से उनकी संतान भी अधिक होती थी - यदि है तो ~~[illegible]~~ व्यवस्था में कुनबी लोग कहीं जाते उनका वर्ण [illegible] तो क्या विरोध आयगा।

दूसरे, मैं बतला चुका हूं, कि यह असवर्ण विवाह का निषेध भी इस लिए बना था कि विवाह सम्बन्धी कोई भी झंझट सामने न आवे, जिससे विवाह का निर्वाह स्ववर्ण से न हो सके - वह परवर्ण से विवाह करके अपना जीवन-निर्वाह कर सके। और यही इसका मुख्य उद्देश्य था। जैसा शास्त्रों के सूक्ष्म-दृष्टि से अवलोकन करने पर पता लगता है।

यहां पर लिख देना आवश्यक है कि पूर्व समय में प्रत्येक व्यक्ति-मनुष्य के बहु विवाह या असवर्ण विवाह नहीं होते थे - जैसा कुछ के मनुष्यों का ख्याल है - परन्तु राजा महाराजाओं या प्रसिद्ध पुरुषों के ही बहु-विवाह होते थे - अन्य लोग तो आजकल की भांति एक पत्नी वाले ही होते थे। इसी प्रकार राजा महाराजाओं में या प्रसिद्ध पुरुषों में ही असवर्ण विवाह का उल्लेख मिलता है - न कि सब में। इसका कोई लिए देखिए - कि चौथे काल में असवर्ण विवाह का विधान या प्रचार था तो भी जीवंधर स्वामी ने नन्दाढ्य [illegible] [illegible] की [illegible] विवाह करना क्यों स्वीकार नहीं किया था - और अस्वीकार करने का कारण आचार्य ने "[illegible]" लिखा है - अर्थात बड़े मनुष्यों की अयोग्य पदार्थ की इच्छा नहीं होती। समझ में नहीं आता - कि [illegible] को से रखा तो कोई उनका बड़ा होने दूसरों को अयोग्य बतलाया! इतना ही नहीं - जीवंधर स्वामी ने क्षत्रिय कुमार थे और वैश्यों के प्रायः [illegible] की कन्याएं लेने के उदाहरण भी मिलते हैं फिर भी उन्होंने अस्वीकार किया - इस लिए इस पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह बात बिलकुल साफ हो जाती है -

कि यदि स्ववर्ण में कन्याओं की कमी हो — तो अन्य हीनवर्ण की
कन्या से विवाह सम्बन्ध कर सकता है (अन्यथा नहीं)। जीवंधर स्वामी के समय में भी
स्ववर्ण में कन्याओं की कमी होरही थी? — इसलिए उन्होंने १-२ नहीं —
८ आठ कन्याओं तक से विवाह। जीवंधर स्वामी के जीवनचरित पर दृष्टि
डालने से एक बात और स्पष्ट हो जाती है वह यह कि स्ववर्ण —
स्ववर्ण की ही कन्या विवाहे — यदि कदाचित् आवश्यकता हो और
स्ववर्ण में योग्य सम्बन्ध न मिले — तो अपने से हीन किसी शूद्र
वर्ण से उच्च वर्ण की कन्या से विवाहे — [illegible] — हीनवर्णों के
स्ववर्ण में योग्य सम्बन्ध होते हुए भी, हीनवर्णों के साथ विवाह
सम्बन्ध करे। यही कारण है कि जीवंधर स्वामी के क्षत्रियों और वैश्यों
के साथ विवाह सम्बन्ध के प्रमाण मिलते हुए भी शूद्रों के साथ विवाह
सम्बन्ध का प्रमाण नहीं मिलता किन्तु स्वयंवर — निषेध का
प्रमाण मिलता है। और यही मुख्य कारण था कि — श्री आदिप्रभु
ने अनुलोम विवाह — अपने से हीनवर्ण वालों के साथ विवाह —
की आज्ञा देते हुए भी प्रतिलोम विवाह — उच्च वर्ण वालों के साथ विवाह
की आज्ञा नहीं दी।

यदि — ऋषभ देव प्रतिलोम विवाह की आज्ञा दे देते — तो
सभी वर्ण के लोग अपने से उच्च वर्ण वालों की कन्याओं के साथ विवाह
सम्बन्ध करने को दौड़ते — क्योंकि संसार का नियम है — कि सभी मनुष्य
विवाह सम्बन्ध करने के पहिले कन्या के गुण — व अवगुणों को, उसके [illegible]
पांति से कुल की कला आदि को देखते हैं — तो ये सब बातें उच्चवर्णों में
सहज ही में पाई जाती हैं। ऐसी अवस्था में — एक तो उच्च वर्ण वा —
लों की संख्या — पहिले ही कम थी — फिर प्रतिलोम विवाह के अमल हो जाने से —
और भी संख्या कम हो जाती। जिससे उच्चवर्ण वालों का आज तक
रहना असंभव हो जाता। इसलिए मालूम पड़ता है कि उच्च वर्णों
की संख्या दिन पर दिन संसार में घटे — उनको कभी संसार में कमी न हो
इसलिए — प्रतिलोम विवाह की आज्ञा न देते हुए अनुलोम विवाह
की ही आज्ञा श्री आदि प्रभु ने दी।

दूसरे प्रतिलोम विवाह की आज्ञा न देने का कारण एक और है —
वह यह — कि यदि हीनवर्ण वालों की कन्यायें उच्च वर्णों में जाती रहें —
तो संसार में धार्मिक पुरुषों की यानी जैन धर्म धारियों की संख्या [illegible]
सदा वृद्धिंगत होती रहेगी। जिससे यह अनादि काल का जैन धर्म रूपी
वृक्ष सदा पल्लवित व फलित होता हुआ स्वामित्व को [illegible]
— स्वामित्व फल देता रहेगा।

इसलिए जिन लोगों का यह कहना है कि विवाह एक लौकिक [illegible]
है और उसकी व्यवस्था जीवन-निर्वाह के लिए की गई है "[illegible]
हो जाता है। क्योंकि [illegible] से इस दोष का होना स्वाभाविक है।
यदि उच्च वर्ण की कन्यायें भी नीच वर्णों के साथ विवाही जातीं तो
उनके भी आचार विचार नीच वर्णों सरीखे हो जाते। और जो आजकल
जैन आजकल और अजैन आजकलों के विवाह-सम्बन्ध होने से
देखे जाते हैं — अतः प्रतिलोम विवाह सर्व प्रकार धर्म की बजाय
क्षति पहुँचाने वाला सिद्ध होता है। और यही कारण है कि आचार्यों
ने उसका विधान नहीं किया।

तीसरे — उच्च वर्णों की संख्या बढ़ाना भी इसका एक मुख्य उद्देश्य
था — क्योंकि जिस समय यह विवाह व्यवस्था की गई उस समय
साधारण जनता वर्णाश्रम धर्म को समझती नहीं थी, बहुत थोड़े
लोग उच्च वर्ण की दीक्षा से दीक्षित हुए थे — सहसा सबका
बहुतों का उच्च वर्णी होना असाध्य था — ऐसी अवस्था में इन सब
बातों को विचार कर बहुत दूरदर्शिता से काम लिया और आचार्यों ने
असवर्ण विवाह की आज्ञा देने का विधान करते हुए भी अनुलोम-
असवर्ण विवाह का ही विधान किया — और प्रतिलोम विवाह की
आज्ञा न दी। क्योंकि जिस जलाशय में अनेक नाले
आ आकर मिलते रहते हैं — और निकलने के द्वार बन्द रहते
हैं — तो वह जलाशय बहुत शीघ्र भर जाता है — और
[illegible] बढ़ सकता है — इसी विचार से उच्च वर्णों में
होना चाहिए कि द्वार खोले — और संख्या कम न होने का द्वार बन्द
रखा। और यही एक कारण हुआ कि आज तक उच्च वर्ण
यहाँ अच्छी संख्या में मौजूद हैं।

इस प्रकार असवर्ण विवाह की उत्पत्ति के कारण
अनुलोम विवाह का विधान और प्रतिलोम विवाह के निषेध का
सिद्ध इस आगम प्रमाण से पुष्ट किया गया

"असवर्ण विवाह की प्रथा कालेन कैसे हुआ" इस विषय में यद्यपि इतिहास व पुराणों में प्रमाण स्पष्ट रूप से नहीं मिलते हैं - परन्तु फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर बहुत कुछ प्रमाण इस विषय के मिल जाते हैं। उन्हीं के अनुसार यहां विचार किया जायगा,

इस बात को मैं पहिले बतला चुका हूं, कि जिस समय इस प्रथा का प्रारम्भ किया गया - वह समय कैसा था - व उसके होने की उस समय कितनी आवश्यकता थी। परन्तु ज्योंही धीरे धीरे युग व्यतीत होता गया - त्योंही मनुष्यों के [illegible] पापकी प्रवृत्ति बढ़ती गई, और लोगों के हृदय कलुषित होते गए। [illegible] /

धीरे धीरे यह अवस्था यहां तक पहुंची - कि तीन वर्णों की तो बात ही क्या, उच्च वर्णों के मनुष्य भी धर्म-पराङ्मुख होगए और सारे संसार में पापाचार की वृद्धि होगई - परन्तु फिर भी आज कल की अपेक्षा लोग बहुत कुछ उच्च दर्जे पर थे - मंद कषायी थे - और इसके बीच बीच में तीर्थंकरों का व महात्माओं का अवतार होता गया - इससे सत्-धर्म का प्रचार संसार में यथेष्ट रहा - यही कारण है - कि चतुर्थ काल में - २४ मतों का प्रचार होते हुए भी चतुर्थ काल के अन्त तक असवर्ण विवाह होता रहा। जिसका प्रमाण शास्त्रों में स्पष्ट रूप से मिलता है। परन्तु कलिकाल के प्रारम्भ होते ही, - तीर्थ-[illegible] का अन्त होते ही, लोग धर्म-कर्म को भूलने लगे - पापाचार फैलने लगे - संसार में अनेक कुरीतियां प्रचलित होने लगीं - उच्च वर्ण के मनुष्य भी हीन वर्णों के सम्बन्ध से पतिताचरण में प्रवृत्त होने लगे - तब उस समय के धार्मिक पुरुषों ने संसार में धार्मिक-सत्ता [illegible] रखने के लिए असवर्ण विवाह करना तोड़ दिया - और उसकी प्रथा एक दम बन्द हो गई। इस प्रथा के बन्द होने का कारण एक मात्र धार्मिक [illegible] ही है। क्योंकि [illegible] मनुष्यों के ऊपर कुछ न कुछ असर अवश्य पड़ जाता है - जैसा शास्त्रों के [illegible] से पता चलता है,

दूसरे इस प्रकार के बन्द होने का कारण एक और भी था - वह यह कि - जब असवर्ण विवाह की आज्ञा थी - तब उच्च वर्णों की संख्या बहुत कम थी, या यों कहना चाहिए कि नहीं होने के ही बराबर थी। परन्तु जब उच्च वर्णों की संख्या काफी होगई - उनका प्रभाव हीन वर्णों पर पड़ना असंभव होगया - यहां तक कि उच्च वर्णों के लोगों को भी धर्म में स्थिर रखना आवश्यक होगया - तब सभी वर्ण अपने अपने धर्म में स्थिर रहें - इस लिए भी असवर्ण विवाह बन्द कर सवर्ण विवाह की ही आज्ञा तात्कालिक पुरुषों ने दी। और यही कारण हुआ कि - आज तक वर्णव्यवस्था कायम है। जिन्होंने इसे स्वीकार करके [illegible] और सवर्ण विवाह करते रहे - उनमें आज [illegible]

पाताल में चले गए । वर्णव्यवस्था के टूटने से ही आज उनमें धर्माचरण का पालन तक भी नहीं है । और यही मुख्य कारण है - कि वे सभी लोग एक से पतित आचरण व धर्म कर्म शून्य दिख रहे हैं । और - जिसके कारण लोग उनको म्लेच्छ के नामों से पुकार रहे हैं - क्योंकि म्लेच्छों में और आर्यों में केवल यही एक अन्तर माना गया है कि

धर्मकर्म बहिष्कृता - इत्येषां म्लेच्छ संज्ञा ।
मन्यमानैः समाचारैः धर्मवर्तिनस्तथा ।। आर्यहृदयम्

अर्थात् - जो धर्मकर्म से रहित होते हैं - वे म्लेच्छ कहलाते हैं - और श्रेष्ठतम आचारों से वे आर्यावर्त के तुल्य कहलाते हैं ।

यदि उस समय अन्य देशों में भी वर्ण विभाग को बदल कर दिया होता तो आज तक भी भारत वर्ष के समान धर्मप्रधान देश होते वे कहलाते ।

संसार का नियम है कि - सबल निर्बलों को अपना लेता है - इसी प्रकार जिस समय उच्च वर्ण के लोग सबल थे - उन लोगों के हाथों में राजसत्ता थी - तो वे म्लेच्छों को धर्मकर्म करानुगत [illegible] इन्हें भी विवाह लाकर अपने समान वर्णानुगामी बना लेते थे - और यहां तक - कि उनसे उत्पन्न हुई संतान सत्कुलोत्पन्न कहलाती थी, और योग्य जाने के योग्य होती थी । परन्तु ज्यों-ज्यों - उच्च वर्ण के निर्बल होते गए - उनकी राजसत्ता, उनके शासन डोर भी नीचवर्ण के हाथों में चली गई - तो वे अन्य नीच वर्णों को नहीं अपना सके - और उसका प्रभाव यहां तक हुआ - आज देश के देश - वर्णव्यवस्था हीन पाए जाते हैं । और उनमें धार्मिक भावना लेशमात्र भी नहीं पाया जाता है ।

वर्तमान की ही परिस्थिति को देखिए । लोगों ने हिन्दू मुस्लिम - एकता (सफलता के) के लिए प्रयत्न किया - और परस्पर खान-पान का उपदेश दिया - परन्तु हुआ क्या - कि हिन्दुओं ने अपना धर्म कर्म छोड़कर उनमें मिले - अपनी रीति-रिवाजों को तिलांजलि दी, परन्तु मुसलमानों ने (और रीति रिवाजों को छोड़कर) थोड़ा भी अपना रीति रिवाज नहीं छोड़ा नहीं किया - और अपने धर्म [illegible] हिन्दू-रीति-रिवाज स्वीकृत [illegible] जबकि हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से कई गुणा अधिक है ।

और भी देखिए, कि अंग्रेज भारतवर्ष में आये, और लोगों ने उनके प्रेम और पारितोषकारी करते हुए भी, भारतवासियों ने उनके ही रीति रिवाज को स्वीकृत किया - उन्हीं का वेष धारण किया - उन्हीं की भाषा को सर्वोच्च और आदेय माना - और यहां तक कि हजारों लाखों भारतवासी उनके ही धर्मानुयायी होगए। परन्तु ऐसा कहीं भी देखने में नहीं आया कि किसी अंग्रेज ने हिन्दु धर्म स्वीकार किया हो, उनके रीति रिवाजों को माना हो - और उनका वेष ग्रहण स्वीकार कर निःसंकोच अपने को हिन्दु स्वीकार किया हो। चाहिए तो यह था कि जब इनी गिनी संख्या के लोग अंग्रेज लोग भारतवर्ष में आये थे - तब इतने बड़े भारतवर्ष में - करोड़ों की संख्या वाले हिन्दु समाज के बीच में आकर अपना वेष बदल लेते, अपने आचरण व रीति रिवाज छोड़ते, अपना धर्म व अपनी भाषा छोड़कर हिन्दु-धर्म व हिन्दी या संस्कृत भाषा को सर्वोच्च मानकर उसे स्वीकार करते। सो ऐसा कहीं देखने में भी नहीं आया। इसलिए यह भगवान का कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है - कि -

देयं स्वयं सती बुद्धिर्यशंसा फलवती ध्रुवं।
गृहे कुकर्म तदमला भांति मदिरा घटे तु ॥ वाल्मीकि

देखो - श्रेष्ठ कर्म में बुद्धि शीघ्र प्रविष्ट होती है - और कुकर्म में - अन्य कर्म में हजारों प्रयत्न करने पर भी बुद्धि प्रविष्ट नहीं होती होती है। इन सब बातों का कारण यही है - और वह सद्धर्म आत्मा का बहुत शीघ्र अपने आधीन कर लेता है।

यही कारण है कि लोग सद्धर्म को शीघ्र छोड़कर असद्धर्म को शीघ्र स्वीकार करते हुए चले जा रहे हैं।

इसलिए हमारे पूर्वजों ने, हमारे महर्षियों ने, अति सूक्ष्म-दर्शिता से इन सब बातों को देखकर - और असवर्ण विवाह व विलायत जाते हुए भी अब बदकर अपनी दूर दर्शिता का परिचय दिया है। इसलिए आधुनिक दृष्टि से असवर्ण विवाह का होना किसी भी तरह न्याय संगत और धर्मानुकूल नहीं है।

असवर्ण विवाह [illegible] में जिन लोगों का ख्याल है कि —
जब प्रतिलोम विवाहों की आवश्यकता होगया — तो पीछे के लोगों को कुछ ख्याल —
पसन्द नहीं आई. और इस लिए इन सब झंझटों से बचने के लिए —
उन्होंने असवर्ण विवाह की प्रथा तोड़ दी । और (इन्हीं लोगों ने यह
बताया है कि हमारी समझ में असवर्ण विवाह प्रथा के मिटने का यही
एक प्रधान कारण है — न कि धर्मशास्त्रों का परिवर्तन, वे तो बराबर
असवर्ण विवाह की पुष्टि करते आये हैं और इतिहास पुराण
भी उनकी ही पुष्टि कर रहे हैं " इत्यादि । उनके मत में इस
निर्णय व विचार पर अच्छी तरह स्पष्ट रूप से विचार होना
चाहिए । क्योंकि मैं इसका भलीभांति दिग्दर्शन करा चुका हूं,
कि असवर्ण विवाह की प्रथा का उदय या विधान क्यों और
किस लिए हुआ था — और फिर वह क्यों बंद कर दी गई ।

~~अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध है~~

दूसरे, यदि झंझट से बचना ही असवर्ण विवाह बन्द करने
का मुख्य उद्देश्य या प्रधान कारण है तो मैं पूछता हूं —
असवर्ण विवाह की अपेक्षा तो सवर्ण विवाह में ही ज्यादा —
झंझटें हैं: कि कहीं पर हमारे गोत्र की लड़की न हो, कहीं
इस विवाह से हमारे रिश्तेदारी का सम्बन्ध तो नहीं उलझता है — इत्यादि ।

अतः झंझट की कल्पना न असवर्ण विवाह के बंद होने में
कारण नहीं है — इसमें तो कुरीतियां ही थे — किन्तु धार्मिक
मर्यादा को कायम रखना ही असवर्ण विवाह प्रथा
~~बन्द~~ के बन्द होने का मुख्य कारण है — और इसी लिए
इसकी प्रथा बन्द की गई (इति शम्) ।

वर्णव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य क्या है? यह लिखने के पहिले इस बात को संक्षेप में बता देना आवश्यक है कि कल्पवृक्ष के पहिले यहां लोग सुखी थे, सत्य आश्रयी, निष्पाप और उदारी, एवं मनुष्य जाति एक ही आचरण वाले थे - और इन्हीं लक्षणों से वे मोक्ष के अधिकारी थे - (इस पर लोगों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इसी स्थिति में आजकल मोक्ष का द्वार बन्द था) परन्तु जब, वह समय चला गया - यहां तक कि कल्पवृक्षों के अभाव में मनुष्यों का जीना तक कठिन हो गया। लोगों में संक्लेशता अधिक बढ़ गई। चारों तरफ से अंधेरे मारे हाहाकार सुनाई देने लगा - ऐसे समय में जब सब लोग श्री आदि ब्रह्मा के पास पहुंचे - और अपना दुःख निवेदन किया कि :-

विभो: समूल मुच्छिन्ना: पित्रकल्पा महांघ्रिपा: ।
फलन्त्यमूनि सस्यानि, सन्त्यपि न नाभुजा ॥१३७॥
शीतातप महावात प्रवर्षोपद्रवश्च न: ।
निराश्रयान्दुनोत्यद्य ब्रूहि नस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥१३८॥
आदि पुराण पर्व १६

अर्थात्, हे प्रभो, पिता के तुल्य कल्पवृक्ष समूल नष्ट हो गए, बिना बोये उगने वाले धान्य भी अब दिखाई नहीं देते, साथ ही समय पर शीतवायु और दिन के समय पर उष्ण वायु तथा वर्षा का उपद्रव हम लोगों निराश्रय लोगों को दुःखी करता है, अतः हे स्वामिन्, इसके प्रतिकार को कहिए। (और कृषि आदि कर्म करते थे, इत्यादि सब जानकारी लोक में आती है) ये करुणा भरे शब्द सुनकर श्री ऋषभ देव ने विचार किया :-

पूर्वापर विदेहेषु या: स्थितिस्समवस्थिता: ।
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमू: प्रजा: ॥१४३॥
षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थिति: ।
यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्यायाश्च पृथग्विधा: ॥१४४॥
तथात्राप्युचिता वृत्तिरुपायैरेभिरङ्गिनाम् ।
ततोऽत्र षट्कर्मभि: प्रजानां जीविकोचिता ॥१४६॥
आदि पुराण पर्व १६

अर्थात् - पूर्व और पश्चिम विदेहों में जैसी स्थिति है वही आज यहां पर चलाना चाहिए, क्योंकि उसी से प्रजा जी वित रह सकती है। जिस प्रकार वहां पर षट्कर्म प्रवृत्ति है, वर्णाश्रम व्यवस्था है, जिस प्रकार ग्राम गृह आदि की रचना है और जिस प्रकार अलग अलग संस्थाएं हैं - वैसा ही।

कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर आज यहां कर्मभूमि में छह कर्मों के द्वारा ही प्रजाजनों की आजीविका चलाना उचित है। इत्यादि - सब इसी के अनुसार उन्होंने कर्मभूमि की व्यवस्था की

इन उपरि लिखित आर्ष वाक्यों से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि जब आर्य ऋषि महात्माओं ने देखा कि ~~लोग~~ ... अब पौराणिक बिलकुल नष्ट हो चुका है – और कलियुग का युग प्रारम्भ हो रहा है, अभी तक लोग ऊंच-नीच सभी होते थे परन्तु अब न ऊंच नीच का ख्याल रखते लोग थे – अभी तक लोग परस्पर ... पृथक होकर नहीं समझते थे – परन्तु अब समय दिन प्रति दिन बदलेगा, लोगों की मनोवृत्तियां बदल जाएंगी तब युद्ध होंगे कि लोग आपस में जमीन, जोरू और जर, अर्थात् पृथ्वी – शासन, स्त्री और धन के ऊपर लड़ मरेंगे – इत्यादि अनेक बातों को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर और अलौकिक ज्ञान द्वारा जाना और ~~इसी लिए~~ इन सब झगड़ों को रोकने के लिए उन्होंने वर्ण व्यवस्था की अर्थात् – आजीविका के वास्ते जन्म कर्म का उपदेश दिया, ऊंच-और नीच योनि के विभाग किये ~~...~~ व धर्म मार्ग प्रवृत्ति-~~...~~ के लिए प्रारम्भ करने के लिए वर्णाश्रम की व्यवस्था की – पृथ्वी के लोभ में राज्यों पर लोग मरेंगे – इसलिए देशों की व राज्यों की स्थापना की व अनुशासन आदि को राजा, महाराजा मांडलिक राजा आदि नियत किया, स्त्री व आवागमन की बाधा दूर करने के लिए घरों की रचना बतलाई, स्त्री जातियों के भय से निरुपद्रव होने के लिए, वहां समस्त अनेक प्रकार की उन्नति धनों के लिए ग्रामों की रचनायें की। जैसा आर्य इतिहास की पद्धति के देखने से पता चलता है। इतना ही नहीं किन्तु धन के लोभ लोग मरण करेंगे – इसलिए विवाह व्यवस्था की – व उसके प्राक् पद्धति, प्रजापत्य पद्धति आदि द्वारा करने का उपदेश दिया।

कहने का सारांश यह – कि लड़ाई की जड़ तीन हैं, जमीन, जोरू, और जर, जो भी आर्य महात्मा इन तीनों की झगड़ों को उस समय के लिए कथा-कल्याण के लिए सारे संसार से दूर किया, और वर्णाश्रम व्यवस्था कर लोगों के हृदय में धर्म का बीज बो दिया।

इस तरह यह बात भी हमें साफ हो जाती है कि आर्य महात्माओं ने उपरि लिखित वाक्यों द्वारा धर्म, अर्थ, और काम इन तीन पुरुषार्थों के करने का काम सारे संसार को पढ़ाया

इसका असली उद्देश्य क्या था?

इस प्रकार वर्णव्यवस्था का इतिहास आरम्भ कैसे हुआ, यह बात अच्छी तरह से देख ली गई। अब इस बात पर विचार करना आवश्यक है, कि आजकल लोग वर्णव्यवस्था को क्या उद्देश्य लगाते हैं और वह कहां तक ठीक है।

जिन लोगों का यह ख्याल है कि "वर्णव्यवस्था जीवन का प्राण है — जाति-अहम धर्म। यदि कोई समाज इसके बिना जीवित रह सकती है — तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं" इत्यादि। और अपने इस उद्देश्य की पुष्टि- "फुलफिल दि टेस्ट" "इत्यादि आइडलाज्ड केवल १८ ने वर्ष के १८७३ के ... दो तीन फैमिदर कर रहे हैं और आगे पीछे के इतिहासों की बिलकुल पता ही नहीं लगने देते हैं यह उनका समाजद्रोह ... है।

मनुष्यों के ऑल पार्टी तो कहें कौन, वे तो यह तक लिख रहे हैं कि— ~~यदि आजकल वर्णव्यवस्था न होती तो~~ - 'वास्तव में प्रजा के जीवन के लिए वर्णव्यवस्था है न कि जैनधर्म के आगे बनाने के लिए"।

इन विचार वाले लोगों से मेरा पूछना है कि प्रजा के जीवन के लिए वर्णव्यवस्था की क्या आवश्यकता थी? क्या वर्णव्यवस्था के बिना ~~समसामयिक~~ जन समाज जीवित नहीं रह सकता? यदि नहीं रह सकता, तो बताइए, आपका यह कहना कहां तक ठीक है कि "यदि कोई समाज इसके बिना— वर्णव्यवस्था के बिना, जीवित रह सकती है — तो इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

यदि आप कहें — कि नहीं; उस समय तो बिना वर्णव्यवस्था के कोई कोई समाज जीवित ही नहीं रह सकती थी, और आज रह सकती है- तो — मैं पूछता हूं — कि कृपा कर यह बताइए, कि उस समय ऐसी क्या असुविधा थी, जिससे वर्णव्यवस्था की आवश्यकता पड़ी / और आज ऐसी क्या सुविधा हो गई — कि उसकी कोई आवश्यकता ही न रही। क्योंकि कई देश व कई समाज ऐसे हैं जिनमें आज से हजारों वर्ष पहिले भी वर्णव्यवस्था न थी, और न आज भी है, परन्तु फिर भी वे आज तक संसार में जीवित हैं — और उत्तरोत्तर भौतिक उन्नति करते हुए आगे बढ़े चले जा रहे हैं। इसलिए यह कहना बिलकुल निरर्थक है कि वर्णव्यवस्था जीवन का प्राण है।

हां, धर्माचरण या चरणानुयोग की क्रियायें ऐसी हैं जो बिना वर्णव्यवस्था के कायम नहीं रह सकती। और यही कारण है- कि जिन देशों में वर्णव्यवस्था नहीं है- वे ~~लोग~~ ~~उनमें~~ वे भौतिक उन्नति के शिखर पर पहुंच जाने पर भी आध्यात्मिक उन्नति के किनारे भी नहीं पहुंचे। यदि उनमें वर्णव्यवस्था होती- तो अवश्य ही आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर पहुंच जाते।

देखो, अन्य मतावलम्बी विद्वानों को ले लो, कुछ भी जानते हैं तो भी ... हैं तब तक वे गहन तत्त्व तक पहुंच गए हैं- और इसी वजह से बड़े बड़े भी विद्वान मनुष्य आज भी केवल जरा लिखित अक्षरों के मिलने पर ही, अनेकान्तवाद के गहन तत्त्व को सरलता से समझ गए- और उस उपनिषद के उन ~~गहन~~ गंभीर ग्रन्थों की रचनायें कीं- जो आजकल जन्मभर पढ़ने वाला भी उनके वास्तविक अभिप्राय तक नहीं पहुंच सकता है। यदि वर्णव्यवस्था रहित ~~कोई~~ कोई अंग्रेज या मुसलमान इस तरह के स्याद्वाद वगैरह के गम्भीर तत्त्व या पहुंचा हो- ~~तो बताइए। ये अर्थ~~ मद्य मांस खाने वाले ~~वर्ण~~ धर्माचरण की सीमा पर पहुंचा हो तो बताइए। मुझे तो यह मालूम है- ऐसा कुलीनता और धर्म पढ़ने वाले एक १५ वर्ष के बालक को जितना धर्म का परिज्ञान होगा- उतना जीवन भर भी अध्ययन करने वाले अंग्रेज या मुसलमान को नहीं मालूम हो सकेगा। इसलिए यह बात स्पष्ट है कि वर्णव्यवस्था ही धार्मिक मर्यादा में स्थिर रखने वाली प्रवृत्ति करने वाली है।

दूसरे एक और भी विचारणीय बात है- कि हमारे महर्षियों ने स्थान स्थान पर श्रुतियों द्वारा वर्णव्यवस्था को ग्रहण कर- धर्म पुरुषार्थ को ही प्रधान कहकर- उसी द्वारा मोक्ष में उपदेश दिया, क्योंकि अर्थ और काम पुरुषार्थ को करना बिना धर्म के अर्थ और काम को पुरुषार्थ नहीं कहा- न उनसे मुक्ति का वास्तविक फल- मोक्ष ही मिल सकता है। तब यह कैसे संभव है- कि श्री आदिब्रह्मा ने वर्णव्यवस्था रूप धर्म पुरुषार्थ और विवाह की प्रवृत्ति रूप काम पुरुषार्थ का उपदेश देते हुए भी धर्म पुरुषार्थ का उपदेश न दिया हो। यदि आप कहें- कि धर्म का उपदेश अलग दिया था- तो बतलाइए किस जगह इसका वर्णन आता है? अतः स्पष्ट सिद्ध होता है- कि वर्णव्यवस्था के अन्तर ही धर्माचरण का उपदेश दिया- व उसी के लिए आवश्यकता थी।

यदि आप कहें - कि श्री आदि ब्रह्मा ने सिवाय श्री सनातन के धर्म का उपदेश दिया ही नहीं - ~~तो मैं पूछता हूं~~ - उनका आदेश तो ब्रह्मा ने दिया - तो मैं पूछता हूं - कि जब धर्म के दिग्विजय हेतु आसेतु हिमाचल साधु योगियों ने इस इच्छा से महाराजा भरत ने यति के दिन सब राजा महाराजाओं को अपने अपने मुकाम का प्रजाजनों के साथ बुलाकर और आंगन को जल फूल पुष्प दूब आदि से व्याप्त कर समान भाव से बैठा कर एक ही मंदिर से आरती आज्ञा देकर उन लोगों के धार्मिक ज्ञान की परीक्षा ली - तो मैं पूछता हूं - कि जब उन लोगों को धर्म का उपदेश दिया गया था - तो परीक्षा कहां से होने लगी ?

इत्यादि - एक दो क्या कई बड़ी बातें ऐसी हैं जिनसे यह बात सिद्ध होती है कि सनातन की मर्यादा का स्पष्ट रूप से वर्ण व्यवस्था है - और इसी हेतु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को उच्च श्रेणी व शूद्रों को नीच श्रेणी कहा - और संस्कारों का विधान कुछ वर्णों में ही किया गया - अन्य में नहीं। अतः इस को कपिल आदि ने जीवनोपाय बताकर लोगों को भ्रम में डाल रखा है।

## उपजातियों की उत्पत्ति पर विचार

यद्यपि - वर्तमान के जैन इतिहास में उपजातियों की उत्पत्ति के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है - परन्तु आज तक लोगों ने उपजाति की उत्पत्ति में अब तक जो विचार प्रगट किए हैं - उनको मैं आप लोगों के सामने रखता हूं।

खोज करने पर जहां तक अनुमान होता है - यही सिद्ध होता है कि जब असवर्ण विवाह की प्रथा बिलकुल तोड़ दी गई - लोगों ने उसे लोकाचार [illegible] अनुकरण किया - तब भी जो लोग जिन लोगों ने इसको बन्द नहीं किया - उस कारण वहां वे ऐसे करते रहे - बस, इसी से इस कारण से उपजातियों की उत्पत्ति हुई। अन्यथा असवर्ण विवाह की प्रथा के जमाने में अवश्य ही उपजातियों का जिक्र आता। परन्तु चतुर्थ काल के अनन्तर उन कालों के इतिहास में इनका कहीं पता भी नहीं मिलता। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि - पंचम काल के प्रारम्भ से ही, और असवर्ण विवाह की प्रथा के बन्द हो जाने पर इनकी उत्पत्ति हुई।

वर्तमान जैन समाज में वैश्य वर्ण के अन्तर्गत ८४ जातियां मानी जाती हैं - इसी प्रकार ब्राह्मण वर्ण और क्षत्रिय वर्ण में भी अनेक उपजातियां मानी जाती हैं - इन में अनेक उपजातियां तो ऐसी हैं - जो केवल देश या गांव के नाम से उसी नाम वाली प्रसिद्ध हो गई हैं - जैसे कि वैश्य जाति में खण्डेलवाल - खण्डेला गांव के वासी होने, ब्राह्मणों में कान्यकुब्ज - कान्यकुब्ज - कन्नौज देश के वासी होने और क्षत्रियों में राजपूत - राजपूताना के वासी होने से। अनेक जातियां ऐसी हैं जो किसी राजा विशेष की सन्तान होने से उसी नाम वाली हो गई - जैसे अग्रवाल महाराज अग्रसेन की सन्तान होने से, जुम्मेतिया जुझार सिंह की सन्तान होने से, इसी प्रकार यदि खोज की जावे - तो अनेक ही उपजातियां ऐसी मिलेंगी जो देश, गांव, या किसी राजा की सन्तान होने से प्रसिद्ध हुई हैं। हां, कुछ जातियां जरूर कुछ न कुछ मतलब रखती हैं - और जिन पर विचार की जरूरत है - जैसे लमेचू, पोरवाड़, परवार इत्यादि। अब, अन्य लोगों ने उपजाति की उत्पत्ति के विषय में जो विचार प्रगट किए हैं - उनको पाठकों के अवलोकनार्थ सामने रखता हूं ____

अनुलोम सम्बन्ध से संतान के नाम - बनाते ३।

सर्व वर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ ५।

चारों ही वर्णों का क्रम से अपने वर्णों की अक्षत योनि विवाहित स्त्रियों से जो संतान पैदा होती है उसकी वही जाति जानना चाहिए।

ब्राह्मणाद्वैश्य कन्यायाम् अम्बष्ठो नाम जायते।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते ॥ ८।

ब्राह्मण से पैदा हुई वैश्य की कन्या की सन्तान को अम्बष्ठ कहते हैं। ब्राह्मण से पैदा हुई शूद्र कन्या की सन्तान को निषाद कहते हैं। जिसका दूसरा नाम पारशव भी कहा जाता है।

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां क्रूराचार विहारवान्,
क्षत्र शूद्र वपुर्जन्तुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ ९॥

क्षत्रिय से पैदा हुई शूद्र कन्या की संतान जो क्षत्र-शूद्र स्वभाव की उग्र जाति के नाम से पुकारते हैं जो क्रूर आचार विहार वाली होती है।

इस प्रकार विप्र के तीन वर्णों के साथ, क्षत्रिय के दो वर्णों के साथ व वैश्य के एक वर्ण के साथ सम्बन्ध होने पर छः प्रकार की जातियां पैदा होती हैं।

अब प्रतिलोम संबन्ध से होने वाली जातियों के नाम।

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहौ, राजविप्राङ्गनासुतौ ॥ ११। द० अ०

क्षत्रिय से पैदा हुई ब्राह्मणी कन्या की सन्तान को सूत जाति कहते हैं। वैश्य से पैदा हुई क्षत्रिय कन्या की सन्तान को मागध जाति कहते हैं। इसी प्रकार वैश्य से पैदा हुई ब्राह्मणी कन्या की सन्तान को वैदेह जाति कहते हैं।

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चण्डालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्यराजन्य विप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः ॥ १२

शूद्र से वैश्य कन्या के सम्बन्ध होने पर आयोगव, क्षत्रिय कन्या से सम्बन्ध होने पर क्षत्ता और ब्राह्मणी से सम्बन्ध होने पर चण्डाल जाति की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार से वर्णसंकर संतान पैदा होती है और अनेक प्रकार की वर्णसंकर जातियां बन गई हैं। इन अन्य ही उपजातियों में से [illegible] चण्डाल को छोड़ कर और सब अस्पृश्यों में परिगणित किये गए हैं।

अतः इसका सारांश यह है कि चतुर्वर्णों में जो अनुलोम क्रम से संतान पैदा होती है - वह सजातियों से परिगणित हुई हैं - और जो प्रतिलोम क्रम से सन्तान पैदा हुई इनको परिगणना सजातियों से यद्यपि हीन रूप में की गई है फिर भी उनको अस्पृश्य नहीं माना,

स्त्री अनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान् सुतान्। सदृशानेव तानाहु- -र्मातृदोषविगर्हितान्। अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने से निम्न वर्ण की स्त्री से जो संतान उत्पन्न करते हैं वह माता के दोष से हीन होती है - वह सदृश होती है।

[illegible]

इस प्रकार [illegible] उपजातियों [illegible] उनके [illegible]

[illegible] – [illegible] के इस बात का [illegible] है [illegible]

[illegible] में [illegible] होगी । [illegible]

[illegible] – और [illegible] इतना [illegible]

[illegible] मुश्किल हो जाता है ।

इसके – [illegible] उपजातियों [illegible] बात भी [illegible] है कि [illegible]

इन उपजातियों [illegible] कोई विशेष [illegible] – तो [illegible]

[illegible] उपजातियों के [illegible] !

[illegible] कि [illegible] उपजातियां [illegible]

में [illegible] –

उपजातियों में [illegible] ?

इस विषय में [illegible] विचार करने पर, [illegible]

[illegible] – [illegible]

[illegible] जाति के [illegible] व्यवहार [illegible]

[illegible] – [illegible] जाति [illegible]

[illegible] – [illegible] जाति [illegible]

[illegible] ।

[illegible] विचार [illegible] है – [illegible]

होता है कि [illegible] समाज में [illegible] उपजातियों [illegible]

[illegible]

[illegible] है कि [illegible]

[illegible] है – तो [illegible] में [illegible]

जातियों में [illegible] व्यवहार बन्द [illegible] व्यवहार [illegible]

[illegible] – तो [illegible] पड़ेगा – कि [illegible]

[illegible] प्रयोजन

नहीं [illegible], [illegible] रखने [illegible] –

और [illegible] में [illegible] – तो [illegible]

[illegible] नहीं करते । [illegible] उपजातियों

[illegible] है – [illegible] उपजातियों की [illegible] – इस

[illegible] व्यवहार [illegible] में [illegible] –

[illegible] – [illegible] में रहते हुए [illegible]

[illegible] – और [illegible] में [illegible] – तो [illegible]

[illegible] – और [illegible] में [illegible]

[illegible] हुआ ।

क्योंकि जातियों की उत्पत्ति का जो प्रमाण मनुस्मृति में मिलता है वह कहां तक ठीक है? इसका आप स्वयं दूसरे शास्त्रीय बात से देखो — विवाह के जो आठ भेद आपने यहां माने गए हैं — ठीक वही आठ भेद मनुस्मृति में माने गए हैं — जो उनका जो स्वरूप आपके यहां त्रिवर्णाचारों में बताया गया है ठीक वही स्वरूप मनुस्मृति में बताया गया है — इसलिए पाठकों के देखने के लिए व विचार करने के लिए दोनों ही श्लोक उद्धृत करते हैं।

१. ब्राह्म विवाह —

१ — आच्छाद्य चार्हयित्वा च श्रुतशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ सोमसेन त्रिवर्णाचार

२ — आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥ मनुस्मृति

२ दैव विवाह —

१ — यज्ञे तु वितते सम्यक् ऋत्विजां कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवो धर्मः प्रचक्षते ॥ सो० त्रिवर्णाचार

२ — यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥ मनुस्मृति

३ आर्ष विवाह —

१ — एकं वस्त्र युगं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ सो० त्रिवर्णाचार

२ — एकं गोमिथुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।
कन्याप्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥ मनुस्मृति ।

४ प्राजापत्य विवाह —

१ — सहोभौ चरतां धर्ममिति तं चानुभाष्य तु ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ सो० त्रिवर्णा०

२ — सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च ।
कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ मनुस्मृति

५ आसुर विवाह —

१ — ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्यादानं यत् क्रियते चासुरो धर्म उच्यते ॥ सो० त्रिवर्णाचार

२ — ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।
कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥ मनुस्मृति

६ गांधर्व विवाह —

१ — स्वेच्छयान्योन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ सो० त्रिवर्णाचार

२ — इच्छयान्योन्य संयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।
गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥ मनुस्मृति

संतति दैत्यसंज्ञके जायते वर्णविप्लव —
तेन चक्रविक्राडा: समानजाड्रो धर्मलक्षण: ॥
देखो अहिंसा पृष्ठ १३०

७ राक्षस विवाह –

१– हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥ त्रैवर्णिकाचार

२– हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥ मनुस्मृति

८ पैशाच विवाह

१– सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
* स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः [illegible]॥ त्रैवर्णिकाचार

२– सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति।
स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ मनुस्मृति

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों के श्लोक देखने से स्पष्ट पता लगता है कि – प्रारम्भ के तीन विवाहों में तो सिर्फ धार्मिक शब्दों का भेद अवश्य है – किन्तु स्वरूप वही है – और अन्य * पांच विवाहों का स्वरूप शब्दश: वही रक्खा गया है यहाँ तक कि प्राजापत्य जो लौकिक माना जाता है – उसके स्वरूप कथन में कुछ धार्मिक शब्दों तक का भेद नहीं है।

इस प्रकार जब धार्मिक विधियों के स्वरूप निरूपण में दोनों ग्रन्थ विवाद धार्मिक भावना से – एक आधार रखते हैं – इतना ही नहीं – उसे अन्य २ विद्वानों ने, पंडितप्रवर आशाधर जी तक ने माना है – तो फिर इस बात को कहने का कौन साहस कर सकता है कि अपजातियों की उत्पत्ति जिस रूप से मनुस्मृतिकार ने बतलाई है वह ठीक नहीं है। हां, यदि उसमें कोई ऐसी धार्मिक बाधा उपस्थित होती, या – कोई ऐसी अलौकिक बात बतलाई गई होती – या हिंसा से धार्मिक मानता होता – या नरमेध यज्ञों (अश्वमेध यज्ञ) के उनकी उत्पत्ति बतलाई गई होती – तो अवश्य हम उसे स्वीकार नहीं करते – उत्पत्ति बतलाने वाले [illegible] शब्दों को इस तरह इन जातियों के अनादि सिद्ध करने वाले [illegible] पर ध्यान देना चाहिए।

हां, यहां पर लोग यह कह सकते हैं कि मनुस्मृति अन्य लोगों का ग्रन्थ है – उसके प्रमाण नहीं हैं – तो – इसको हम पहिले ही लिख चुके। लेकिन, इतना कहने में किसी संकोच नहीं है कि आगमों में जो कथन कुछ भी लौकिक है – उसके मानने में कोई हानि नहीं है – क्योंकि श्री महर्षि [illegible] देवने अपने यशस्तिलक में [illegible] खंडन करते हुए लिखा है कि – तत्र यदि युक्तियुक्तं – तदेव प्रतिपाद्यं यत् – इति – अर्थात वेद में अन्यमत का ग्रन्थ होने पर भी जो लौकिक युक्तियुक्त हो – उसे प्रतिपादन कर सकते हैं – अर्थात मानने में कोई विरोध नहीं। देखो० अध्याय –

दूसरे, वर्णव्यवस्था अनादि है, उपजातियां अनादि नहीं हैं, यदि उपजातियां भी अनादि होतीं - तो वर्णव्यवस्था के समान ही आदिग्रन्थ [illegible] उनका भी विधान अवश्य करते। परन्तु [illegible] महापुराण में [illegible] उपजातियों का पता नहीं मिलता। इसलिए यह भी अवश्य मानना पड़ेगा - कि इनकी उत्पत्ति किसी न किसी विशेष कारणों से हुई है। और वह कारण विवाह जन्य ही मानना पड़ेगा - अन्यथा उनकी गणना जैन समाज या वैश्य वर्ण में नहीं की जाती।

तीसरे, ये उपजातियां [illegible] लोगों की वर्णों के भीतर पाई जाती हुई भी वे लोग अपने को वैश्य वर्ण का, क्षत्रिय वर्ण का [illegible] या ब्राह्मण वर्ण वाला मान रहे हैं। अतः सिद्ध है कि वर्णव्यवस्था होने के ही बाद इनका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए ये उपजातियां कभी भी अनादि नहीं मानी जा सकतीं।

इसी प्रकार जिन लोगों का यह ख्याल है कि "वर्णव्यवस्था कोई अटल धर्म नहीं है - किन्तु जीवनोपाय है इसलिए आवश्यकतानुसार वर्ण बदला जा सकता या नया बनाया जा सकता है" इत्यादि, और [illegible] वे अपने उस मत का [illegible] "[illegible]" [illegible] इत्यादि [illegible] करते हैं - और कहते हैं कि यदि वर्णव्यवस्था अटल धर्म होता या अनादि होती - तो [illegible] उसकी व्यवस्था [illegible] पड़ी? इत्यादि [illegible]

तो [illegible] उसी [illegible] से [illegible] हो जाता है क्योंकि - मैं बतला चुका हूं - [illegible] आताप से [illegible] ऋषभदेव के शासन [illegible] कि [illegible] - तब [illegible] के विचार ये [illegible] "[illegible] विदेह में जैसी स्थिति है वही यहां पर चलाना चाहिए" इत्यादि - [illegible], इतने से ही स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि वर्णव्यवस्था - अनादि है - क्योंकि विदेहों में अनादि काल से [illegible] [illegible] और [illegible] अविच्छिन्न धारा प्रवाह से चली आ रही है - और [illegible] तक आगे बराबर इसी प्रकार चलती जावेगी।

और इसलिए यह बात भी पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाती है कि [illegible] - अटल धर्म [illegible] [illegible] के मनुष्यों का [illegible] [illegible] से [illegible] जाता है [illegible] और इसीलिए इस बात का भी [illegible] है - तो - उस [illegible] जब [illegible] मनुष्यों का अटल धर्म [illegible] आवश्यकता थी। और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

— इसी प्रकार वर्णव्यवस्था को जीवनोपाय मानने की बात - तो इसे
अपर हम पहिले ही अच्छी तरह विचार कर चुके हैं - कि जब
बिना वर्णव्यवस्था के भी मनुष्य भली भांति जीवन निर्वाह करते हैं
या रहते हैं । तब हम इसे जीवनोपाय कैसे माने । यदि
वर्णव्यवस्था वास्तव में जीवनोपाय भी मानें - तो फिर आज
वह अंग्रेज या मुसलमानों में वह क्यों नहीं पाई जाती है ? क्यों वे
उसके बिना भी जीवन निर्वाह करते हैं । अतः जीवनोपाय मानना
भ्रम है । अतः यह सिद्ध होगया कि वर्णव्यवस्था अनादि है
वर्णों की अनादि निधनता सिद्ध नहीं
इसी प्रकार यह कहा जाना कि "महाराज भरत ने ब्राह्मण वर्ण
की स्थापना की, और तीन वर्णों में से ब्राह्मण वर्ण बनाया गया
इससे भी सिद्ध है कि आवश्यकतानुसार वर्ण बदला जा सकता या
नया बनाया जा सकता है ।
— यह कहा जाना कि - वर्ण यदि अनादि हैं तो भी उनका आरम्भ
होता है ही, लेकिन उनका कोई उल्लेख भी होना चाहिए
है महाराज भरत ही इसके उदाहरण हैं । इत्यादि
ताकि उनसे यह सिद्ध होता है कि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र
इन तीन वर्णों की प्रथा तो अनादि काल से विदेह क्षेत्रों में चली आ
रही है जो कि आगम सिद्ध है - इसी प्रकार महाराज भरत के ब्राह्मण
वर्ण बनाने और अन्य तीन वर्णों के बदलने की बात - तो इसका आ
शय है कि उक्त अनादि निधन है, और उसकी स्थि
ति विदेह क्षेत्र में मध्य में है - यदि कोई मनुष्य विदेह क्षेत्र में जाने को
असमर्थ है और इसलिए भरत या ऐरावत क्षेत्र में उसकी सिद्धि नहीं हो सकता -
उसकी स्थापना करता है - इसका अर्थ यह नहीं और अनादि निधन होगया
कि यह वही उक्त होगया, या अनादि और अनादि निधन
यहां नये उक्त की स्थापना होने से वह अनादि निधन
उक्त का अभाव हो जाता है - और इसी
अनादि इसकी भांति सादि या अनादि कहा जा सकता है कि - उस उक्त का
लिए यहां वर्णों का विस्तार परिवर्तन होगया । किन्तु और जो अनादि
स्थान परिवर्तन या विस्तार परिवर्तन होगया । किन्तु अनादि निधन है वह
वास्तव में यही कहा जायगा कि - जो अनादि निधन है वह
अनादि निधन और अकीर्तित है और जो स्थापित, सादि
या कृत्रिम है वह, स्थापित, सादि या कृत्रिम ही होगा -
दोनों कभी एक नहीं हो सकते ।

तो यह बात तात्पर्य ~~व्यवस्था~~ का है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वर्ण अनादि काल से चले आरहे हैं — वे अनादि, अकृत्रिम और ध्रुव हैं। और जो ब्राह्मण वर्ण महाराज भरत ने स्थापित किया — वह ~~अनादि~~ सादि, कृत्रिम और अनित्य है।

~~अतः यह बात सिद्ध होगई~~ कि जो वर्ण अनादि-अकृत्रिम और ध्रुव हैं — वे सादि, कृत्रिम, और अनित्य नहीं हो सकते, और जो वर्ण कृत्रिम, सादि, और अनित्य है — वह कभी अनादि, अकृत्रिम और ध्रुव नहीं हो सकता।

~~तीर्थंकरों ने~~ आदि ब्रह्मा ने जो वर्ण व्यवस्था की, सो — व्यवस्था करते समय उन्होंने यह नहीं विचारा कि मैं दुनिया के सामने आज कोई ~~अलौकिक~~ अपूर्व एवं कार्य कर रहा हूं — किन्तु यही विचार के — कि "पूर्वापर विदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता अस्ति सा अद्य अत्र प्रवर्तनीया" अर्थात् विदेहों में जो स्थिति है वह ~~यहां भी~~ उसे यहां भी प्रचलित करना चाहिए। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उन्होंने वर्ण नई बनाई नहीं हैं किन्तु अनादि से जो चली आरही है — और जिससे लोग धर्मशिक्षा की तरह अर्थ काम पुरुषार्थ को भी उपार्जन कर सकते हैं — उसी को यहां भी चलाना चाहिए ~~यही~~ जिससे प्रजा उपार्जन करके जीवित रह सके।

अतः सर्वप्रथम यह सिद्ध है कि जो भी आदि ब्रह्मा ने वर्ण व्यवस्था की वह विदेह का अनादि है।

अब सिर्फ यहां पर २ प्रश्न खड़े होते हैं: —

१ — जब कि वर्ण व्यवस्था अनादि है, और उनमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य उच्चगोत्री और शूद्र वर्ण नीच गोत्री हैं — तब यह कैसे माना जाय — कि वैश्य या क्षत्रिय वर्ण की सभी लोग उच्चगोत्री हैं? क्योंकि कुल प्रमाण शत ८५ मनुष्यों का ... आदि ... सैकड़ों ... के ... जाते हैं?

२ — जब कि वर्ण व्यवस्था अनादि है — तब वर्ण लाभ ... कैसे मान लिया जावे? क्योंकि — अनादि होने से वर्ण को बदला जा सकता था?

अब दोनों प्रश्नों पर विचार किया जाता है।

प्रथम गुणस्थान पर विचार :—

जिस प्रकार अरहंतों—आदि के प्रति चढ़ते हुए भी गुणस्थान [illegible] रहते हैं — इसी प्रकार उनकी [illegible] होता है और जिस प्रकार परिणामों [illegible] उत्कृष्ट [illegible] प्रतिष्ठापना [illegible] होते हुए भी गुणस्थान [illegible] स्थानवर्ती ही कहलाता है — जब-तक कि अपने गुणस्थान की मर्यादा को उलंघन नहीं करता है। किन्तु जिस समय वह गुणस्थान की मर्यादा का उलंघन कर जाता है — तब वह उससे [illegible] पहिले गुणस्थान में चला जाता है। परन्तु इतना [illegible] स्वगुणस्थान-च्युत कहलाने लगता है। [illegible] आवलीपरिवर्तन होते हुए भी, द्रव्य दृष्टि से वह [illegible] उन्नति ही कहलाता है, लेकिन जब उसके वास्तविक [illegible] परिवर्तन दिखने लगता है — तो फिर वह मुनि [illegible] से पृथक् ही रहता होकर, लोग आदि कहने लगते।

ठीक इसी प्रकार गोत्र का [illegible] है कि जबतक आन्तरिक परिवर्तन के फल परिणामों में रहता है और बाह्य परिस्थिति पर कोई धक्का नहीं आता — तबतक वह उसी गोत्री पर कर्म [illegible] — जिसमें अवस्थित है। परन्तु जिस समय उसकी [illegible] शिथिल होती हुई [illegible] हो जाती — तुरन्त वह गोत्र पाप [illegible] कहलाता — परन्तु इसका नियम गुणस्थानों सरीखा समय [illegible] नहीं है — इसके लिए बहुत समय सुधरने का [illegible] के लिए माना गया है। और यही कारण है कि इनको गुणस्थानों सरीखी अन्तर्मुहूर्त की स्थिति न बताकर पीढ़ियों तक की बताई है — क्योंकि गोत्र का लक्षण पर [illegible] सन्तान क्रमेणागत जीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा।

अर्थात् — कुल परम्परा से आये हुए जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं, ऐसा लक्षण करने का तात्पर्य यही है कि जो आचरण जितना अधिक मजबूत होगा — उतना ही — अधिक दिन टिकेगा।

इसलिए वास्तव में — जिसका आचरण अपने वर्ण की अपेक्षा [illegible] जाता है — उसको भी वर्ण भ्रष्ट ही समझना चाहिए। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह किसी मनुष्य के परिवर्तन होने से वर्ण में भी [illegible] जायगा — वह वर्ण का परिवर्तन [illegible] जायगी। क्योंकि [illegible] गुणस्थानों की तरह [illegible] रहते [illegible] परिवर्तन [illegible]

दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है - कि जिस प्रकार मनुष्य अपने परिणामों में उन्नति करता हुआ उच्च स्थान पा जाता है या अवनति करता हुआ गिरता जाता है - लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी - चित्त [illegible] और इस में [illegible] किए - छूटे हुए स्थान की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए यह ठीक है कि मनुष्य अपने नैतिक आचरण भी उन्नत कर सकता है - परन्तु जब तक उसकी वर्ण [illegible] नहीं हो जाती है तब तक वह उस वर्ण का - जिसे स्वीकार करना चाहता है - नहीं कहला सकता। इसलिए नीच वर्ण वाले को उच्च वर्ण के लिए इस वर्ण [illegible] क्रिया को धारण किया जाता है। अत: वर्ण बदलने या नवीन वर्ण धारण करने पर भी वर्णव्यवस्था के अनादि होने में कोई धक्का नहीं लगता। हाँ, यदि यह नियम होता कि - जो जिस वर्ण में पैदा होता है - उसके परिणाम उसी तरह तद्रूप ही बने रहते हैं - अन्य वर्ण के [illegible] तो अवश्य यह कहना पड़ता कि वर्ण [illegible] नहीं हो सकता - या यह मानना पड़ता कि वर्णव्यवस्था अनादि नहीं है। सो ऐसा नियम तो जहाँ तक मेरा अनुभव है - कहीं भी देखने में नहीं आता।

वर्तमान [illegible] वर्ण परिवर्तन वर्तमान में [illegible]?

इस विषय पर वर्तमान में अनेक विचार हो रहे हैं - या अनेक प्रश्न हो रहे हैं - जिन पर विचार करना आवश्यक है?

कुछ महाशयों का कहना है कि चाहे, ईसाई हो या मुसलमान - और चाहे कोई हो या [illegible] क्यों न हो। सब हो शुद्ध उसका वर्ण बदल देना चाहिए। [illegible] ऐसा करने में कोई नुकसान नहीं है अत: [illegible] व्यवस्था [illegible] होना चाहिए" इत्यादि। और इस अपने मन्तव्य की सिद्धि के लिए [illegible] दुहाई दिया करते हैं - परन्तु संक्षेप में यही उत्तर दिया जाता है कि शास्त्रों में जो [illegible] नहीं है [illegible] अन्यथा नहीं। [illegible] जब [illegible] देखते हैं - कि हम लोग [illegible] - तब [illegible] - कि [illegible] लोग [illegible] में रख सकेंगे। [illegible] बना सकेंगे?

हां, यदि आज, हम लोग जैन धर्म में स्थिर रहते हुए, अपनी जाति या समाज के बच्चे बच्चों को शिक्षा देकर — उन्हें आजीविका के उपाय बताकर, और सदाचारी — धर्मनिष्ठ बना करके उन्हें धर्म में दृढ़ कर देते, तो समाज को इस बात का विश्वास हो जाता — कि अवश्य ही आप लोग इस कार्य में सफल होंगे — या संसार में जैन धर्म का डंका बजा सकेंगे। परन्तु जब समाज देखती है कि ये सुधारक लोग, वास्तविक सुधार न करके, समाज को मनमानी उच्छृंखलता के प्रवाह में प्रवाहित कराना चाहते हैं — लोगों में धर्मश्रद्धा की बजाय [illegible] पैदा करना चाहते हैं — भारतीय सभ्यता को तिलांजलि देकर पाश्चात्य सभ्यता को अपनाना चाहते हैं — तब ऐसी दशा में समाज आपके कार्य को — इस वर्णपरिवर्तन के कार्य को कैसे ठीक कह सकती है।

दूसरे — वर्णपरिवर्तन का असली अभिप्राय है — कि जिस मनुष्य के नीच गोत्री कुल कई पीढ़ियों से शुद्ध चला आ रहा है, जिस कुल में कई पीढ़ियों से मद्य मांस का ग्रहण नहीं हुआ है — और ऐसे किसी मनुष्य के यदि मिथ्या विचार बिलकुल मन्द उदय हो जावे — सद्धर्म प्राप्ति की तरफ उसकी रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ रही हो — तो ऐसे मनुष्य का उच्च गोत्र में या उच्च वर्ण में परिवर्तन कर दिया जाय। क्योंकि ऊंच या नीच गोत्र से ही एकाएक आचरण नहीं बदल जाता — जैसा सुधारक लोग मान रहे हैं।

जिस मनुष्य के कुल में परम्परा से लोग मद्य मांस का भक्षण करते चले आ रहे हैं — यदि उस कुल का कोई एक मनुष्य मद्य मांस नहीं भी खावे तो क्या वह ऊंच गोत्री कहा जा सकता है? कभी नहीं। क्योंकि — उस के शरीर की रचना उस रज वीर्य के संयोग से हुई है — जिसके अंश आहार मद्य और मांस से पुष्ट हो गए हैं — और उसके फिर संस्कार से संस्कारित किया गया है।

अतः यह समझो कि जिसने आज मद्य मांस का त्याग किया है — वह चिर संस्कार से रहित हो जाय! या इसी जन्म में पूर्ण ब्राह्मण बने। बहुधा देखा गया है कि जो मनुष्य आज मांस खाना छोड़ देता है — कुछ दिन बाद मनुष्य उसी को मांस खाते हुए देखते हैं। मेरे सामने स्वयं ऐसी घटनाएं हुई हैं — जिससे मुझे यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि वर्तमान युग में वर्ण परिवर्तन की व्यवस्था कायम नहीं की जा सकती। संस्कार बड़ा प्रबल माना गया है — यदि किसी को पूर्वजन्म के विद्याभ्यास का संस्कार हो — तो वह अल्प समय में बहुत शीघ्र विद्वान हो जाता है — या किसी को पूर्वजन्म का कोई बुरा संस्कार लगा हुआ हो — तो वह उच्च वर्ण में पैदा होकर भी नीच कार्य करता है या स्वयं पतित होकर इतना मुसलमान बन जाता है — और इस बात के अभी आज तक भी उदाहरण विद्यमान हैं — अतः यह बिलकुल सिद्ध बात है कि जिस मनुष्य का पूर्व जो संस्कार होगा —

आत्मोन्नति में उसी प्रकार का आचरण होना चाहिए, कारण है कि आचार्यों ने ऊंच नीच गोत्र की व्यवस्था एक भव के आचरण से नहीं- संतान क्रम से आगत जीव के आचरण से की है। जैसा कि गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है—

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।

इस प्रकार जब यह बात सिद्ध हो गई- कि किसी भी कुप्रवृत्ति के कारण एक भव का लोकाचार गोत्र परिवर्तन नहीं हो सकता, तो फिर वर्ण परिवर्तन से क्या लाभ हुआ? उत्तर मिलेगा- कुछ भी नहीं।

यदि यह कहा जावे- कि वह संयमासंयम का स्वामी हो जाता है- यह कौन कम बात है? तो इसके उत्तर में यही कहना है- कि इसका त्याग तो वह अपनी जाति में रहते हुए भी कर सकता है।

यदि यह कहा जावे कि वर्ण परिवर्तन से जैन जाति की संख्या वृद्धि होगी- तो भी ठीक नहीं- क्योंकि कलिकाल में संगति का असर बहुत भारी पड़ता है- यहां तक कि- लौकिक बातों की तो कहे कौन, धार्मिक कार्यों में भी उसका कुप्रभाव पड़ता है। हम इतने दृढ़ नहीं, कि जो दूसरों को अपनी तरफ परिणमन करा सकें- प्रत्युत भारतीय जो आज कल करने में सबसे सिद्धहस्त माने जाते हैं। अतः इस कारण भी वर्ण परिवर्तन ठीक नहीं।

यदि वर्ण परिवर्तन का अर्थ जैन धर्म का प्रसार करना है- तो इसका प्रसार, बिना वर्ण बदले भी हो सकता है। और इसकी तो बहुत आवश्यकता भी है इसलिए अजैनों के वास्ते आचार्यों ने उपदेश देने का विधान किया है- जैसा कि कहा है—

कुधर्मस्थोऽपि सद्धर्मं लघुकर्मतयाऽद्विषन्।

भद्रः स देश्यो द्रव्यत्वान्नाभद्रस्तद्विपर्ययात्॥

यदि कोई मनुष्य कुधर्म में स्थित भी हो- और मिथ्यात्व के उदय से सद्धर्म से द्वेष नहीं करता हो- तो वह भी उपदेश देने योग्य है- क्योंकि आगामी काल में उसके सम्यग्दर्शनादि गुण पैदा होने की संभावना पाई जाती है। परन्तु इसके विपरीत अभद्र को- तीव्र कषायी को उपदेश देना ठीक नहीं। क्योंकि उसमें द्रव्यत्व का अभाव है।

अतः सुधारकों का कर्तव्य है कि वे अपने सुधार छोड़कर जैन धर्म का प्रचार करना सीखें- इसी में उनका जातिपरिवर्तन ... कुंजी- व्यर्थ में वर्णपरिवर्तन की झंझट में न पड़ें।



इतिहास से भी यह स्पष्ट प्रमाणित है- कि पहले पहले यहां के सनातन धर्मी अपनी अपनी जाति में रहते हुए ही लोगों ने जैन धर्म का सेवन करते थे- न कि अपनी जाति छोड़कर। उनके साथ खानपान एक था, पीछे भेद हो जाते थे। तीर्थंकर भगवान के समवशरण में सब जाति के जीव जाते थे- सभी जाकर अपने अपने स्थान पर बैठते थे, धर्मोपदेश लाभ करते थे- किन्तु फिर भी भगवान ने यह उपदेश नहीं दिया कि- तुम सब एक होकर खानपान एक करलो। इसका मतलब [illegible] जिनके आचरण ऊंचे हैं उन्हें समान जाति वालों के साथ ही रोटी- बेटी व्यवहार होना चाहिए। नीच वर्णों को जैनी बनाकर उनके साथ रोटी- बेटी व्यवहार करना योग्य नहीं है। [illegible]

# अन्तर्जातीय-विवाह पर विचार

जैन समाज के वैश्य वर्ग की अन्तर्जातियों (उपजातियों) पर विचार हो चुका है. अब विचार है - अन्तर्जातियों के परस्पर विवाह पर। जातियों की उत्पत्ति पर [illegible] सामान्यतः किसी समय उपजातियों की उत्पत्ति [illegible] आपस में मतभेद रहा होगा, ~~[illegible]~~ यही कारण है - कि उपजातियों की संख्या इतनी अधिक बढ़ी - और ~~[illegible]~~ परस्पर में इतना [illegible] देखते हैं - कि इन उपजातियों में ~~[illegible]~~ परस्पर कोई भी धार्मिक भेद नहीं है - और एक प्रान्त में बसने वाली अनेक उपजातियों में रोटी व्यवहार तक चालू है - ऐसे होते हुए भी जब धार्मिक कोई बाधा उपस्थित नहीं होती - तो समझ में नहीं आता - कि लोग आजकल उसके होने में आपत्ति [illegible] - मैंने जहां तक इस पर विचार किया - यही धार्मिक [illegible] बतलाते हैं - [illegible] कोई भी धार्मिक भेद नहीं है, जिनका निर्णय हुआ - कि जिन जातियों में आपस में कोई भी धार्मिक भेद नहीं है, और जो एक प्रान्त में बसने वाली हैं - रोटी व्यवहार परस्पर में चालू है, उन उपजातियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध करने में कोई भी धार्मिक बाधा नहीं है।

हां, जिन लोगों का यह कहना है कि जैन समाज में परस्पर रोटी बेटी व्यवहार चालू होना चाहिए - जिसका यह अर्थ भी निकलता है कि जिन जैन जातियों में विधवा विवाह होता है - उनके साथ भी रोटी-बेटी व्यवहार चालू होना चाहिए उसमें कोई भी नुकसान नहीं है - ~~[illegible]~~

ऐसे विचार वालों से मैं पूछता हूं - कि विधवा-विवाह वालों के साथ रोटी बेटी व्यवहार करना - विधवा विवाह का समर्थन करना नहीं है? क्या उनके कार्य की पुष्टि करना नहीं है। अतः [illegible] मार्ग यही है कि जिन जातियों में कोई भी धार्मिक भेद नहीं है / जिनके आचरण व चारित्र एक से हैं जो [illegible] नहीं हैं जिनमें विधवा विवाह या [illegible] प्रचलित नहीं है, ऐसी उपजातियों के साथ सम्बन्ध करने में कोई भी धार्मिक आघात नहीं होता है - ऐसे [illegible] धर्मविरुद्ध कहना एकान्त का पक्षपात है

कुछ लोग इसको विधवा विवाह की भूमिका [illegible] बतलाते हैं - और इसी लिए इसके प्रचार से डरते हैं कि यदि आज [illegible] तो कल ये सुधारक लोग विधवा विवाह [illegible] की भी आवश्यकता बताने लगेंगे क्योंकि सुधारकों में से कई लोग [illegible] के [illegible] हुए हैं - उनको [illegible] इत्यादि / तो इस बात को मैं मानता हूं कि [illegible] उनके उद्देश्य भी [illegible]

## जैन समाज के उन्नत होने का मार्ग - १

धर्म बन्धुओ, वर्तमान जैन समाज की अवस्था किसी भी मनुष्य से छिपी हुई नहीं है। एवं उसकी उन्नति के लिए अभी तक जातीय, प्रान्तीय एवं सार्वजनिक सभा सोसाइटियों ने बहुत कुछ प्रयत्न भी किया है। और मुझे जहां तक मालूम है - काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। परन्तु अब भी - इतना होने पर भी यदि बुन्देलखण्ड के छोटे २ गांवों में जाकर देखा जाय - तो वहां पर अभी तक कुछ भी प्रकाश नहीं पहुंचा है। सभी स्थान बराबर अज्ञानान्धकार में पड़े हुए हैं। वहां के रहने वाले भाइयों को अभी तक इतना भी पता नहीं है कि हमारी समाज की जाति की कोई सभा है? तथा हमारी जाति की कोई शिक्षा है? इन बुन्देलखण्ड के छोटे २ गांवों में जाकर जब हम उनकी गरीब एवं अशिक्षित दशा को देखते हैं - तो आंसुओं की धारा बह निकलती है - वहां पर सैकड़ों ५० आदमी अनविवाहित हैं - जो विवाहित हैं - उनके आजीविका का जीवन निर्वाह का कोई भी साधन नहीं है फिर उनकी सन्तान की शिक्षा - दीक्षा की तो बात ही क्या है उसकी प्रबन्ध व्यवस्था तो वहां होता ही कौन है। प्रथम तो सभाओं की ओर से कोई उपदेशक ही नियुक्त नहीं है। यदि कोई उपदेशक किसी सभा की तरफ से उपदेशार्थ भ्रमण करते भी हैं - तो प्राय: रेलवे स्टेशन - मोटर स्टेशन - या प्रसिद्ध २ गांव में जाकर ही भ्रमण समाप्त कर देते हैं। सभायें भी इस बात पर कोई ध्यान नहीं देती है, या - यों कहना चाहिए - कि सभाओं के कार्यकर्ताओं को स्वयं अपने कार्यों से फुरसत नहीं मिलती है तो फिर कार्य की कौन कहे, समाज में जागृति करे, एवं शिक्षा और [illegible] प्रवृत्ति ही कौन करे? अतएव इस लेख में समाज का ध्यान आकर्षित कर - समाज से निवेदन करता हूं। कि - प्रथम तो वह उन्हीं मनुष्यों के हाथ में शासन सौंपे - जिनके हृदय में समाज का वास्तविक चित्र - अंकित हो, जो हृदय से समाज के उद्धार की भावना भाते हों, जिनको समाज की कार्य-प्रणाली से प्यार हो - एवं जो निःस्वार्थी, और उदार त्यागी, उदारमना और शिक्षित हों। यह अवस्था केवल परवार-समाज की नहीं है - परन्तु गोलापूर्व, गोलालारे आदि समस्त बुन्देलखण्ड वासिनी जैन जाति मात्र की है। और समस्त बुन्देलखण्डवासी जैन समाज से मेरा यह निवेदन है [illegible]

इसके बाद, बुन्देलखण्ड के मुख्य २ ग्रामों मे स्थान खोलें, उनमें जहां तक हो - आनरेरी काम करने वाले, उत्साही शिक्षित मनुष्यों को प्रचार (उपदेशक) का कार्य सौंपे उनका आशालता सभाओं का कुछ (सोध्य उद्देश्य प्रत्येक ग्राम में करने का रहे। जब तक ग्राम संगठन नहीं होगा - ग्रामों २ के गरीब अनाथ और असहाय बच्चे शिक्षित और आजीविका सम्पन्न नहीं होंगे, तब तक यह गरीब और अशिक्षित बुन्देलखण्ड उन्नत ~~और शिक्षा सम्पन्न~~ नहीं हो सकेगा। तब तक बुन्देलखण्ड जैनों का सिद्ध क्षेत्र और अतिशय क्षेत्रों की उन्नति हो सकेगी। अतः सरकार सभा के इस विभाग के अधीन भिन्न-भिन्न, प्रान्तों और ग्रामों से आये हुए, प्रतिनिधियों ~~का~~ जैन समाज के उत्थान का ~~उपाय~~ और सरल उपाय निर्णय का आवेंगे। जिससे समस्त बुन्देलखण्ड और मध्यप्रान्त और बरार प्रान्त की जैन जाति शीघ्र उद्धार हो सके। यदि इस मौके पर इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर, विचार नहीं हो सकेगा, - यह प्रश्न न हो सकेगा - तो मेरे ख्याल से - आगे निकट भविष्य या चतुर्थोवीं अधिवेशन में इस बात ~~पर~~ शायद निर्णय हो सकेगा।

मैंने, इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर, जहां तक विचार किया है, - और जहां तक खोज की है, उसका संक्षेप आपलोगों के सामने निवेदन करता हूं - आशा है आप लोग इस पर भली भांति विचार करेंगे - और विचार करके यदि यह ठीक जँचे, - तो उसको कार्यरूप में परिणत ~~करने की कोशिश~~ प्रयत्न करें।

बुन्देलखण्ड और मध्य प्रान्त के अन्दर, श्री सोनागिर श्री द्रोणगिर और श्री नयनागिर ये तीन सिद्ध क्षेत्र और श्री पपौरा, श्री कुंडलपुर श्री [illegible] रामटेक ये तीन अतिशय क्षेत्र मुख्य हैं। इनमें से श्री सोनागिर और द्रोणगिर को छोड़कर शेष क्षेत्रों पर पाठशालायें भी स्थापित हैं। और प्रत्येक क्षेत्र के आस-पास के प्रान्त में कम से कम १०० सौ गांव ऐसे होंगे जहां पर जैन जातियों के घर अधिक तादाद में अवश्य होंगे। एवं इन्हीं क्षेत्रों के आस-पास में २-२ या ४-४ लखपती पार धनाढ्य अवश्य ही निवास करने वाले निकलेंगे।

यदि इन्हीं क्षेत्रों पर स्थित, पाठशालाओं को, विशाल रूप दिया जावे और उस क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले आस-पास के ग्रामों का एक एक मुखिया उस विद्यालय का सभासद् बनाया जावे। उनका कर्तव्य हो कि वे अपने अपने गांव से कम से कम १ एक छात्र अवश्य ही पासवाले क्षेत्र पर की पाठशाला में पूरे खर्चे के भेजें। अर्थात् अपने अपने गांव से कम से कम ५/६ मासिक या १०/ रु० मासिक एक छात्र के खर्चों का इन्तजाम चन्दा द्वारा करके क्षेत्र की पाठशाला में भेज दें। यदि इस तरह से, प्रत्येक ग्राम से, कम से कम, एक ही छात्र, मय खर्चे के, पाठशाला में पहुंचेगा तो सहज ही पाठशाला में, १०० छात्र और १०००/ रु० या कम से कम ५००/ रु० की मासिक आमदनी सहज ही में हो जावेगी। और यों आमदनी होने से विद्यालय या पाठशाला का खर्च आनन्द से चल सकेगा।

इस प्रकार की पाठशाला या विद्यालयों में नये ढंग का पठन-क्रम रक्खा — विशेष से कम क्रियात्मक रक्खा जावे — जिसमें धार्मिक और संस्कृत पढ़ाई के साथ साथ शारीरिक, औद्योगिक लौकिक — महाजनी और [illegible] शिल्प कला की शिक्षा भी बराबर के साथ दी जावे।

इस ढंग की पाठशालाओं में छात्र १० वर्ष की अवस्था से भर्ती किए जावें और उनसे १० वर्ष का [illegible] [illegible] उनके माता-पिता से।

प्रकाशित समझा जावे। साथ ही साथ प्रवेश होते ही प्रत्येक छात्र को ~~[illegible]~~ यज्ञोपवीत संस्कार करा, पाठशाला में रहते पर्यन्त उन्हें ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जावे और पीत-वस्त्र धारण कराये जावें।

ऐसी संस्थाओं के अधिष्ठाता व प्रबन्धक ब्रह्मचारी रहें। जिससे समय समय पर ब्रह्मचर्य और ओजस्विता की शिक्षा मिलती रहे। अध्यापक - अनुभवी विद्वान् रक्खे जावें। साथ ही साथ प्रत्येक संस्था में एक प्रचारक रहे, जो बारह महीने घूमा करे, और ग्रामों से आनेवाले चन्दा को एवं अन्य चन्दों को उगाता रहे। यदि इसी भांति संस्थायें पांच-पांच सौ क्षेत्रों पर खोल दी जावें, तो और पांच-पांच सौ पांच ब्रह्मचारी या स्वार्थ त्यागी नियुक्त किए जावें एवं ऊपर बतलाये गए मार्ग का अनुसरण किया जावे तो सहज ही में संस्थाओं का कार्य चल सकता है। ऐसा होने से और १० वर्ष के भीतर ५००० विद्वान् तैयार हो सकेंगे जो पूर्ण विद्वान्, वैदिक और नाना प्रकार की लौकिक शिक्षा सम्पन्न होंगे, जो, ~~[illegible]~~ स्वयं ही अपने अपने ग्राम की उन्नति करते हुए अपने ग्रामवासियों को शिक्षित बना सकेंगे।

(१) ~~इस~~ ऐसा करने में एक बड़ी भारी सुविधा यह होगा - कि ऊपर बतलाये गए क्षेत्रों में से ४ क्षेत्र रियासतों के भीतर हैं - जहां पर गल्ला - घी आदि आवश्यक सामान बहुत ही सस्ता रहता है। ~~[illegible]~~ वर्तमान में प्रायः बड़ी संस्थायें शहरों में हैं, जहां पर कि - भोजन खर्च, रियासत वाली संस्थाओं से आधे का दूना या उससे भी अधिक पड़ता है।

(२) दूसरे - यदि प्रयत्न किया जावे - तो ऐसी संस्थाओं को देशी राज्यों की ओर से भी बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। जैसे वर्तमान में ग्वालियर राज्यान्तर्गत कई जैन संस्थाओं को मासिक या वार्षिक सहायता प्राप्त होती है।

(3) तीसरे ~~यदि~~ ऐसी संस्थाओं में छात्रों को जब समय समय पर सामाजिक शिक्षा मिलेगी – तो संस्थाओं से बाहिर निकलते ही, वे ही छात्र, सभाओं के उद्देश्यों को सरलता से, जन साधारण में, प्रकाशित कर सकेंगे। क्योंकि यह मानी हुई बात है, कि किसी देश की उन्नति उसके छात्रों पर ही निर्भर है।

(4) चौथे – ~~इससे बड़ा~~ ऐसा करने में बड़ा भारी सुभीता यह होगा – कि संस्थाओं के कार्य संचालकों को कभी भी रुपये की जटिल समस्या का सामना नहीं करना पड़ेगा।

(5) पांचवें – ऐसी संस्थाओं के क्षेत्रों पर रहने से, क्षेत्रों का बड़ा भारी प्रबन्ध सरलता से होता रहेगा। उनकी रक्षा के लिए जो ~~कि~~ मुनीम नौकर पुजारी आदि कई आदमी रक्खे जाते हैं – उनको नहीं रखना पड़ेगा – या उनसे ही संस्थाओं को बड़ी सहायता मिल सकेगी।

(6) छठवें संस्थाओं के प्रत्येक छात्र को यदि – प्रतिदिन पूजन करने का नियम बना दिया जावेगा। तो क्षेत्र पर स्थित ७५-७५ विशाल जिन मन्दिरों की पूजन भी प्रतिदिन सरलता से हो सकेगी। जो कि बड़े भारी धर्म प्रभावना का कारण होगी.

(7) सातवें – वहां से पढ़कर निकलने वाले छात्रों का, १० वर्ष तक नित्य-पूजन करने का, दृढ़ अभ्यास रहेगा – जिससे वे गृहस्थ- शेष जीवन में भी प्रतिदिन पूजन आदि धर्म-अंगों का विधि वत् पालन करेंगे।

वर्तमान में – शिक्षा शालाओं में, इस बात पर कोई लक्ष्य नहीं दिया जाता है – यही कारण है – कि वर्तमान में, समाज में फैले हुए विद्वान्, पूजन के उत्तम फल को जानते हुए भी, पूजन नहीं करते – या – पूजन करने में अपनी तुच्छ मान – हानि समझते हैं – और इसी कारण से अब गांव गांव में पुजारियों की संख्या वृद्धि हो रही है। इत्यादि। अतः ये बड़ी भारी कमी भी, उपर्युक्त नियम की कड़ाई से – समाज से शीघ्र दूर हो जावेगी.

(8)

आठवें – शहरों की दूषित वायु से, छात्र प्रायः चारित्र-भ्रष्ट होजाते हैं और या, छोटी उम्र में काम-विकार होजाने से दुबले पतले, निर्बल, पीले पीले, खुली हुई आंखों वाले, चश्मुद्दीन और अकर्मण्य होजाते हैं । इसी कारण कई पढ़नेवाले, होनहार सुपुत्र, भी अकाल में ही काल के गाल में चले जाते हैं । और विधवाओं की संख्या बढ़ जाती है । अतः उपर्युक्त दंगली शालाओं में जब 40 वर्ष तक ब्रह्मचर्य और योग्य आहार विहार के साथ पूर्ण शारीरिक शिक्षा प्राप्त करेंगे तब संस्थाओं से निकलने के बाद अवश्य ही स्वयं सुखी होते हुए अपने ग्राम में शारीरिक और धार्मिक शिक्षा का प्रचार सफलता से कर सकेंगे ।

नवें – आधुनिक शालाओं में औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध न होने से पढ़कर निकलनेवालों को जो आजीविका की जटिल-समस्या सामने आ जाती है – और जिसके कारण अच्छे २ होनहार सुपुत्र, नौकरी के फेर में पड़कर समाजसेवा से वञ्चित रहजाते हैं। वह भी सरलता से हल होजावेगी।

अतएव इस प्रस्ताव पर, समाज-उद्धार के इस मुख्य उपाय पर आपलोग खूब अच्छी तरह विचार करें, और साथ ही तदनुकूल कार्यरूप में परिणत करें।

क्या ही अच्छा हो, यदि, किसी भी क्षेत्र की आसपास की पाठशालायें - क्षेत्र पर ही खोल दी जावें। जिससे छोटी २ अनेक शालाओं की एक बड़ी आदर्श संस्था बन कर - आदर्श कार्य सरलता से कर सके।

मेरे इस निवेदन पर, बुन्देलखण्ड और मध्यप्रान्त वासी समस्त जैन समाज को - चाहे वे परवार हों या चाहे गोलापूर्व या गोलालारे - दोनों [illegible] को - सभी को ध्यान देकर विचार करना चाहिए। और साथ ही साथ - जिस जाति के हाथ में, जो क्षेत्र या जिसके पास में जो क्षेत्र हो - उसे वहां अग्रसर होकर संस्था खोलने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। तभी समाज का कल्याण, प्रस्ताव पास करना, और लम्बे चौड़े व्याख्यान झाड़ना और लजन्य जहां समाजों में आज साधक है। तभी वास्तव में आपलोग समाज-हितैषी और धर्मात्मा कहला सकेंगे।

दमोह वालों के पास में कुंडलपुर क्षेत्र है, सागर वालों के पास में श्री नैनागिर क्षेत्र है, टीकमगढ़ वालों के पास में श्री पपौरा क्षेत्र है, ललितपुर और लश्कर, [illegible] वालों के पास में [illegible] गोलाकोट और ग्वालियर वालों के पास में श्री सोनागिर क्षेत्र है - नागपुर वालों के पास में श्री रामटेक क्षेत्र है अतः उपर्युक्त स्थानों पर रहने वाले [illegible] इस बात पर तो - अब शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए।

१ ✓१ समाज में, अपेक्षा [illegible] व उनकी समालोचना
२ ✓२ शिक्षा संस्थाओं - व शिक्षा प्रणाली।
३ [illegible] वर्तमान पंचायत का ढंग.
४ [illegible] जैन अनाथालय [illegible]
५ - जैन समाचारपत्र व उनकी समालोचना.
६ - बाबू पंडित का मतभेद।
[illegible] वर्तमान समय में आवश्यकता

श्री

श्री वीतरागाय नमः



## विवाह — समीक्षा

### विवाह का उद्देश्य

संसार में मनुष्य मात्र को विवाह करना आवश्यक माना गया है। यदि पुरुष या स्त्री समाज विवाह न करे, तो सृष्टि ही बन्द हो जाये। सामाजिक और धार्मिक सब कार्य रुक जायें — ढीले पड़ जायें। इसलिए धर्म और कुल की परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली जावे — इसी हेतु से विवाह करना आवश्यक माना गया है।

यद्यपि विवाह का उद्देश्य अन्य मतावलम्बी अपने-अपने ढंग से मानते हैं। उनका कहना है कि यदि गृहस्थ पुरुष विवाह न करे — यज्ञादि के समय धर्मपत्नी को अपने पास न बैठावे, तो वह, उस क्रियाकांड के फल को प्राप्त नहीं होता है — उसे स्वर्गादि की प्राप्ति नहीं होती है। वह पिता के ऋण से तब तक उऋण नहीं हो सकता, जब तक वह सन्तान पैदा न करे इत्यादि। परन्तु जैनधर्म इस विषय में कुछ विलक्षण ही आज्ञा देता है। उसका मूल उद्देश्य संसार-बन्धन मुक्त होना = या मोक्ष प्राप्ति है। और इसीलिए उसने गृहस्थाश्रम की अपेक्षा ब्रह्मचर्याश्रम को, प्रधान माना है। राग परिणति की अपेक्षा विराग = परिणति को ही मुख्य स्थान दिया है। परन्तु जो मनुष्य अपने को विराग धारण करने के योग्य नहीं समझता है, अपनी असमर्थता को प्रगट करता है, उसी के लिए जैनधर्म ने, आचार्यों ने, गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मानुकूल आचरण करते हुए जीवन बिताने की आज्ञा दी है। और इसीलिए गृहस्थाश्रम के प्रत्येक कार्य में गृहस्थ को लौकिक कार्य करते हुए, अपने कार्य को धर्मानुकूल या धर्माविरुद्ध देखना आवश्यक माना गया है। अतएव जिन लोगों का यह ख्याल है कि "विवाह लौकिक कार्य है, इसमें धर्म अधर्म के चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं", ठीक नहीं है। क्योंकि इसको तो एक ही बार प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य स्वीकार करेगा, कि जब जैनधर्म का मूल उद्देश्य संसार-बन्धन मुक्त होना माना गया है, तब संसार में फंसाने वाले विषयों की प्रवृत्ति को कैसे जैनधर्म की आज्ञा मानी जाय! परन्तु इसका मतलब यह नहीं हो सकता है, कि उसको लौकिक कार्य बतला कर धर्माचरण का उद्देश्य ही उस पर से हटा दिया जाय।

क्योंकि मैं पहिले बतला चुका हूं, कि यदि मुनिव्रत धारण करने की सामर्थ्य नहीं है, तो गृहस्थाश्रम में रहते हुए धर्मानुकूल प्रवृत्ति करे। और वीतराग मार्ग को अपना मूल उद्देश्य माने। अतः जैन-धर्मानुसार विवाह का मुख्य उद्देश्य क्या है, इस बात को पाठकों के सामने रखता हूं। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि:—

धर्मसन्ततिमक्लिष्टां, रतिं वृत्तकुलोन्नतिम्।
देवादिसत्कृतिं चेच्छन्, सत्कन्यां यत्नतो वहेत्॥

सागार धर्मामृत।

धर्म की परम्परा क्रमबद्ध चली जावे, उसमें कोई बाधा न उपस्थित न हो, संक्लेश रहित रति हो, अपने चारित्र की और कुल की उन्नति हो, देव-पूजन, पात्रदान आदि की प्रवृत्ति बनी रहे, इसलिए, या इन बातों की लालसा रखते हुए ही सत्कन्या से विवाह करे।

अब जिन लोगों ने संख्या-वृद्धि करने को ही विवाह का उद्देश मान रक्खा है, या केवल अपनी विषय-वासना को संयत रखना ही उसका उद्देश्य माना है, मेरा उन लोगों से पूंछना है, कि क्या कभी आपने विवाह के पवित्र उद्देश्य पर विचार किया है? इसी प्रकार श्री नाभिराय ने श्री १००८ आदिनाथ भगवान से विवाह के लिए प्रार्थना करते हुए कहा है कि:—

ततः कलत्रमेष्टव्यं परिणेतुं मनः कुरु।
प्रजासन्ततिरेवं हि नोच्छेत्स्यति विदांवर॥
प्रजासन्तत्यविच्छेदे तनुते धर्मसन्ततिः।
मनुष्व मानवं धर्मं ततो देवेनमच्युतं॥
देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहं।
सन्तानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनाम्॥ आदिपुराण

हे देव, मैं जानता हूं, कि आप संसार देह भोगों से बिलकुल उदास हैं, लेकिन तो भी जबतक आपका दीक्षाकाल नहीं आया है, तबतक को स्त्री से विवाह करने के लिए आप मनको करें। क्योंकि ऐसा करने से हे विदांवर, प्रजा की परम्परा का विनाश न होगा। प्रजासन्तति के अविच्छेद होने पर ही संसार में धर्म की परम्परा आगामी तक चल सकेगी। अतः हे देव यह विवाह करना मानव-धर्म है, इसे आप स्वीकार कीजिए।

हे देव, दार-परिग्रह को — स्त्री से विवाह करने को गृहस्थ धर्म कहते हैं। यह आपको स्वीकार करना चाहिए। धर्मशास्त्र कहता है कि गृहस्थों को सन्तान के रक्षण में हमेशा प्रयत्न करना चाहिए। इत्यादि।

इस प्रकार इस युग के प्रारंभ में सर्वप्रथम श्री नाभिराय ने विवाह का उद्देश्य बतलाते हुए श्री आदि ब्रह्मा से विवाह की प्रार्थना की, जिसे उन्होंने "ओम्" कहकर स्वीकार किया।

## बहु विवाह और उसके हानि लाभों पर विचार

जिस समय कर्मभूमि के प्रारंभ में, इस बहु विवाह की प्रथा प्रारंभ हुई थी, उस समय जन संख्या बहुत कम थी, भोगभूमि के प्रत्येक दम्पति से एक युगल संतान होने का नियम मिट चुका था, मनुष्यों की आयु भी भोगभूमि की अपेक्षा बहुत कम रह गई थी। साथ ही उनके जीवन-निर्वाह का प्रश्न भी सामने आ खड़ा हुआ था, लोग पाप-पुण्य और बन्ध-मोक्ष को समझने लगे थे, उनके हृदय में संयम-धारण करने के भाव पैदा होने लगे थे, तब ऐसे समय में, मनुष्यों को शान्ति-पूर्वक, निरुपद्रव, जीवन-निर्वाह करते हुए, आगामी कालों धर्म सन्तति को क्रम-बद्ध चलाते हुए, अपने आत्म-कल्याण या आत्मोद्धार का प्रश्न सामने खड़ा था, इत्यादि कारणों से तात्कालिक पुरुषों को बहु विवाह करना आवश्यक होगया — और लोगों में बहु विवाह की प्रथा फैल गई।

दूसरे उस समय कन्याओं की भी संख्या अधिक थी, या यों कहना चाहिए, कि उनकी उत्पत्ति अधिक संख्या में होती थी, जिससे भी बहु विवाह करना आवश्यक होगया था। और यही कारण था, कि जिसको सामने रख कर आदि ब्रह्मा ने असवर्ण-विवाह का भी विधान किया, उसका उपदेश दिया, और उसके होते हुए भी धार्मिक कार्यों में बाधा नहीं बतलाई।

यह तो हुआ, बहु विवाह की उत्पत्ति पर विचार, अब उसके हानि लाभों पर विचार किया जाता है।

आर्ष-ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पूर्व जमाने में लोग उत्तम संहनन-धारी, बलिष्ठ, असंख्य वीर्यवाले, पूर्ण पुष्ट और सबल नीरोग शरीर होते थे, यही मुख्य कारण था, कि एक पुरुष के दो चार की तो कहे कौन, हजारों विवाह होने पर भी पुरुष क्षीणवीर्य नहीं होते थे, रोग-ग्रस्त और अल्पायु नहीं होते थे। और इन्हीं सब कारणों से मनुष्यों की अकाल मृत्यु भी नहीं होती थी, जिससे कि एक मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर हजारों स्त्रियों को वैधव्य-जीवन का दुःख भोगना पड़ता। यदि कदाचित उस समय हजारों नारियों के स्वामी की अकाल-मृत्यु हो जाती, और हजारों स्त्रियों को वैधव्य-जीवन का दुःख भोगना पड़ता, तो पुरुषों के —

प्रीति-भाव रखती थीं, उन सबका आचरण धर्मानुकूल होता था; वे सांसारिक-भोगोपभोगों को भोगती हुईं, गृहस्थ धर्म का विधिवत् पालन करती थीं। वे गृहस्थ-धर्म में इतनी दक्ष होती थीं, कि प्रसिद्ध-पुरुषों की तो कहे कौन, यदि एक दरिद्र से दरिद्र मनुष्य के घर भी मुनिराज आहार को आ जाते थे, तो उनको निर्दोष और निरन्तराय आहार दे सकती थीं। जैसा कि अकृत-पुण्य की माता या अन्य कथाओं से विदित होता है। यही कारण था, कि उस समय हजारों मुनियों का संघ भी एक साथ किसी मामूली गांव में पहुंच जाता था, तो उस गांव के श्रावक-श्राविकायें उनको विधि-वत् निर्दोष आहार दे सकती थीं। इन सब बातों से स्पष्ट जाना जाता है, कि उस समय बहुविवाह की प्रथा किसी भी प्रकार हानिकारक नहीं थी।

तीसरे, यदि यह प्रथा हानिकारक होती, तो स्वयं तीर्थंकर क्यों अनेक विवाह करते। या जैसे महर्षियों ने अन्य निषिद्ध-कार्यों के करने का निषेध किया है, वैसे ही बाहुल्यता से प्रचलित इस बहुविवाह की प्रथा का भी निषेध करते। परन्तु इस प्रकार के उपदेश का विधान किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। इससे स्पष्ट सिद्ध है, कि उस समय बहुविवाह किसी भी तरह हानिकारक नहीं था, किन्तु सर्वप्रकार लाभ-दायक व उपयोगी था।

परन्तु वर्तमान परिस्थिति पर विचार करते हुए कहना पड़ता है कि यह बहुविवाह बहुत हानिकारक है, क्योंकि आजकल प्रथम तो स्त्री समाज की संख्या ही बहुत कम है। दूसरे मनुष्य, अल्पायु, रोगग्रस्त, क्षीणवीर्य वाले और दरिद्र हैं; ऐसी परिस्थिति में भी यदि पुरुषों को बहुविवाह की आज्ञा दी जाती है, या दी जावे, तो एक तो स्त्री समाज के प्रति अन्याय होकर उनको [illegible] में आ जाता है, उनको विधवा बनाकर भ्रूणहत्या में व गुप्त-व्यभिचार कराता है। दूसरे उन पुरुषों के साथ अन्याय करता है, जो स्वस्थ, नीरोग-शरीर, नवयुवक होते हुए भी, कन्याओं के लिए तड़पते रहते हैं। ऐसी अवस्था में पुरुषों के बहुविवाह होना बहुत ही हानिकारक है।

तीसरे, जब आजकल एक माता के उदर से पैदा हुई दो बहिनें भी अशिक्षा के कारण आपस में प्रेम भाव से नहीं रह सकती हैं, तो फिर सौत के होते हुए, उनके परस्पर की तो पूछना ही क्या है? मैंने तो यहां तक देखा है, कि यदि किसी मनुष्य की दो स्त्रियां हैं, तो वे दोनों ही आपस में एक दूसरे को विष देकर मारने के लिए तैयार रहती हैं। नौबत यहां तक पहुंचती है, कि बेचारा पति भी सदा सन्तप्त-चित्त रहता हुआ, उनके द्वारा काल-कवलित हो जाता है। अतः इस प्रकार भी वर्तमान में बहुविवाह का होना श्रेयस्कर नहीं है।

चौथे, आजकल के मनुष्य, जिनमें खास कर आजकल के पैदा हुए, उनमें भी जैन समाज में उत्पन्न हुए मनुष्य स्वभाव से ही क्षीणवीर्य वाले होते हैं, होवें-क्यों न, जब उनके माता-पिता ही क्षीणवीर्य वाले, रोगग्रस्त और आजकल औषधि सेवन करके रखे हुए शरीर वाले होते हैं। ऐसी दशा में मनुष्य नियम से असामयिक मृत्यु को प्राप्त होते हैं। वीर्य का क्षीण होना ही आयु का अन्त करने वाला है। इसलिए बहुविवाह करने पर प्रायः स्त्रियां नियम से विधवा में हो जाती हैं। फिर इतने से ही कुशल नहीं है। हम आप में से ही सैकड़ों मनुष्य अपनी विषय वासना तृप्त करने के लिए बेचारी विधवाओं को पाप-पथ में प्रवृत्त कराते हैं। और उनको इस प्रकार गर्भ गिराने सरीखी निन्द्य व अत्याचार पूर्ण पाप-प्रथा को चलाते हैं। आज सैकड़ों ऐसे दृष्टान्त मौजूद हैं, जहां बेचारी विधवायें घर या कुटुम्ब के ही मनुष्यों द्वारा भ्रष्ट कर दी जाती हैं। और बात प्रगट होने पर बेचारी निरपराध अबलायें घर से निकाल दी जाती हैं, जाति व धर्म से भ्रष्ट कर दी जाती हैं। और वे भी बाल बाल बच जाते हैं। इसे हम सामाजिक अन्याय, या पुरुषों के अत्याचार नहीं कहें, तो क्या कहें।

वास्तव में देखा जाय, तो हम लोग ही धर्म मार्ग और शील व्रत को भंग कर अधर्म व अन्याय का प्रचार करते हैं। यदि आज पुरुष समाज की — हम लोगों की वृत्ति संयत होती, हम धर्म अधर्म का विचार करते होते, कुरीतियों को समाज में घुसने नहीं देते, हम विधवाओं के साथ बलात्कार कर उनको शील भ्रष्ट न करते, उनको गर्भ गिराने की शिक्षा या उपायन बताते, —

तो बेचारी स्त्रियां, जो सर्व अवस्था में पुरुष समाज के अधीन हैं — कभी भी अधर्म-मार्ग पर नहीं चलतीं; — उसे स्वीकार नहीं करतीं। और तो क्या बेचारी विधवायें, जो पुरुष-समाज के अन्याय से व्यभिचार कर गर्भ धारण करती हैं, और सन्तान का मुख देखने की इच्छा से, मोह से, गर्भ गिराने को तैयार नहीं होती हैं, उनको तीर्थ-यात्रा का बहाना बनाकर जबरदस्ती, गर्भ गिराने के लिए बाध्य किया जाता है। इसको हम विधवाओं के कुकर्म कहें, या नर-पिशाचों के दुष्कर्म? अतः सर्वप्रकार उसका समाज ही, हमलोग ही दोषी हैं। यदि आज हम उनको शील व्रत का पाठ पढ़ाकर धार्मिक-शिक्षा देते, उनके जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध करते, उनको गृहस्थी के सभी अच्छे बुरे काम करने वाली नौकरानी-दासी, या इससे भी बढ़कर, — मैले लाल को खाने वाली, चाण्डालिनी न मानते, होते, तो क्या आज ये दशा देखने को मिलती, जो दुनियां के नेत्रों पर आंसुओं की धारा बहा रही है। बज्र से बज्र हृदय को भी टुकड़े कर रही है।

अफसोस, इतना सब देखते और सुनते हुए भी हमलोग आनन्द की नींद सो रहे हैं, और अपने को दुनियां में सब से बड़ा धर्मात्मा मान रहे हैं, बिना कुछ करते हुए भी, समाज को व्यर्थ का स्वप्न देख रहे हैं। अतएव वर्तमान में बहु विवाह सर्व प्रकार अन्याय-पूर्ण, दुराचार का प्रवर्तक, समाज के अधःपतन को कराने वाला ही सिद्ध होता है। और कि उससे लाभ होने की बात तो बहुत दूर है।

# पुरुष के पुनर्विवाह पर विचार

लोग अभी तक पुरुष के बहुविवाह और पुनर्विवाह को एक समझते हैं, लेकिन वास्तव में बात ऐसी नहीं है। एक स्त्री के रहते हुए जो दूसरा विवाह या अनेक विवाह किए जाते हैं, उसे बहु विवाह कहते हैं। और जो एक स्त्री की मृत्यु हो जाने पर दूसरा या अनेक विवाह किये जाते हैं, उसे पुनर्विवाह कहते हैं। यह दोनों में लक्षण-भेद है। पुरुष के बहुविवाह पर तो विचार कर चुके, अब पुनर्विवाह पर विचार करते हैं।

प्रत्येक बात का विचार दो तरीकों से किया जाता है, एक लौकिक-पद्धति और दूसरी धार्मिक-पद्धति से। इसलिए इस बार भी विचार हम दोनों ही पद्धतियों से करते हैं।

लौकिक-कार्य वहीं तक ठीक माने जाते हैं, जहां तक उनके करते हुए सम्यक्त्व में हानि या व्रत में कोई दूषण न आवे। इसी प्रकार धार्मिक-कार्य भी वे ही और वहीं तक ठीक माने जाते हैं, जो आत्म-कल्याण या आत्मोद्धार के साथ-साथ, समाजोत्थान के करने वाले हों। जिनके करते हुए मिथ्यात्व से सद्धर्म का लाभ हो कर मोक्ष-सुख की प्राप्ति हो। अतः जो वीतराग सर्वज्ञ-देव के द्वारा प्रतिपादित मार्ग है। जिसे गणधरों ने-महर्षियों ने उपदेश दिया है, वही ही सत्य मार्ग है, वही ही मोक्ष सुख का देने वाला और संसार-दुःख का नाश करने वाला है। उसकी पद्धति का नाम ही धार्मिक-पद्धति है।

अब विचार यह है कि विवाह लौकिक कार्यों की श्रेणी में है, या धार्मिक-कार्यों की श्रेणी में। जिससे उसी पद्धति के अनुसार उस पर विचार किया जा सके। इस विषय में यद्यपि विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं, परन्तु बहुत ऊहापोह के बाद मुझे जो अनुभव हुआ है, या मैं जिस विचार पर पहुंचा हूं, वह आप लोगों के सामने रखता हूं।

विवाह के विषय में श्री महापुराण की आज्ञा है ~~कि प्रजा~~ सन्तति के अविच्छेद होने पर ही धर्म की सन्तान परम्परा-बढ़ सकती है। यदि प्रजा की सन्तति का ही विनाश हो जाय, तो फिर धर्म की परम्परा किसके आश्रय चल सकती है। अतः धर्म-परम्परा के चलाने के वास्ते विवाह करना, ~~[illegible]~~ और सन्तान पैदा करना आवश्यक माना गया है। और यही गृहस्थ-धर्म है जैसा कि "विवाह के उद्देश्य" में हम बतला चुके हैं। इसलिए विवाह गृहस्थ-धर्म को विधिवत् पालने का और धर्म की सन्तान संसार में रखने का मुख्य कारण है।

अतः कारण से कार्य का उपचार कर विवाह को यदि धार्मिक कार्य माना जाय, तो कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है। अथवा इसलिए कहा, कि जैनधर्म का मूल उद्देश्य वीतरागता की प्राप्ति है। जैसा कि पहिले बतलाया जा चुका है। और सरागता का कारण होने से, संसार की प्रवृत्ति का कारण होने से यह धर्ममार्ग नहीं माना जा सकता। इसलिए इसे लौकिक कार्य भी मानना पड़ेगा। और यही उपदेश हमारे महर्षियों ने भी दिया है। अतः पुनर्विवाह पर विचार करना दोनों ही पद्धतियों से परम आवश्यक है।

जिस समय मनुष्य पूर्ण आयु वाले होते थे, धर्म पर जिनका दृढ़-विश्वास होता था, जो धर्म और समाज जो जाति के कार्यों को अपने प्राणों की रक्षा से भी बढ़कर मानते, और उनके करने में सदा दत्त-चित्त रहते थे। जिनका यह मुख्य-उद्देश्य था, कि "संपल्लाभ फलं पुंसां सज्जनानां हि पोषणम्" अर्थात्- सम्पत्तिलाभ का फल सज्जनों का पोषण करना ही है, जो धर्म सेवा के लिए धन कमाते थे, जिनका जीवन ही परोपकार के लिए होता था, जो अपनी विभूति को ही परार्थ समझते थे, जिनके जिम्मे धर्म व समाज के अनेक कार्य होते थे, ऐसे —

# विजातीय विवाहपर कुछ सम्मतियाँ।

२

(गतांकसे आगे)

**श्रीमान् पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ** भूतपूर्व धर्माध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी और वर्तमान प्रधानाध्यापक जैन पाठशाला सादूमर एक सुयोग्य विद्वान हैं। आप हमारे पत्रके उत्तरमें लिखते हैं—

'जैनमित्र' में विजातीय विवाहके पक्षमें जो आपके लेख निकले हैं उन्हें मैंने अच्छी तरह पढ़ा है व विचार भी किया है। सन् १९१९से मेरे हृदयमें ये ही विचार उठा करते थे कि क्या बात है—कि जैन समाजके अन्तर्गत जातियोंमें रोटीव्यवहार होनेपर भी बेटीव्यवहार नहीं होता है? शास्त्रोंपर विचार करनेसे यही निर्णय होता है कि जैन विजातीय विवाह किसी भी प्रकार धर्म विरुद्ध नहीं है। हां यह मान सकते हैं कि किसी जमानेमें कोई खास कारणके आजानेसे परवार, अग्रवाल इत्यादि रूपमें दलबंदी होना ठीक था अथवा इसी रूपमें हुई होगी। जबकि उसकी बड़ी आवश्यक्ता पड़ी होगी मगर जब देखते हैं कि अकबरके जमानेसे आज तक जैनियोंकी संख्या करोड़ोंसे लाखों पर पहुँच चुकी है, दिनपर दिन अवनति होरही है, पारस्परिक विद्वेष—दावानल बढ़ रहा है, तो यही विश्वास होता है कि विजातीय विवाह ही विश्व प्रेमका प्रसार करेगा और तभी हम एकताके सूत्रमें बंध सकेंगे। मुझे तो परवार सभा, गोलापूर्व सभा इत्यादि डेढ़ डेढ़ चांवलकी खीचड़ी पकाने-वालों पर भी बड़ा अफसोस होता है कि क्या हम अपने सहधर्मी भाईको नीचे ढकेलकर उन्नत बन सकेंगे? इसलिये मेरी समझमें विजातीयविवाह किसी भी प्रकार धर्मविरुद्ध नहीं है और उसका होना अतीव आवश्यक है इसमें मेरी पूर्ण सम्मति है।

निवेदक—हीरालाल जैन न्यायतीर्थ।

From Jainmitr 1933

श्री

श्रीमान् राय बहादुर धर्मवीर वयोवृद्ध पूज्य सेठ साहब की सेवामें

सविनय पांवाधोक

पूज्यवर ,

आपकी धर्मपरायणता, वत्सलता, करुणा आदि गुणोंपर मैं अत्यंत मुग्ध हूं। इच्छा नहीं होती कि आपका दुष्प्राप्य सत्संग छोड़कर अन्यत्र जाऊँ, परन्तु दैव बलवान् है। अस्तु।

आपने अपने जीवनमें सहस्त्रों शास्त्रों का स्वाध्याय कर इस बात का भलिभांति निश्चय किया है, कि इस दुःखमय संसार में मिथ्यात्व जैसा प्रबल दुखदायक अन्य कोई शत्रु नहीं है। आचार्यों ने कहा है—

अधोमध्योर्ध्व लोकेषु, नाभून्नास्ति न भाविता।
तद्दुखं यन्नदीयेत मिथ्यात्वेन महारिणा॥

अर्थात् अधोलोक, और ऊर्ध्वलोक मध्यलोक में ऐसा कोई दुख न था न है न होगा जो कि मिथ्यात्वरूपी महावैरी के द्वारा न दिया जाता हो।ऽ

इसी प्रकार आपने यह भी निश्चित किया है कि इस अशरण संसारमें सम्यक्त्व (जैनधर्म) के समान उत्तम सुखदायक परममित्र भी कोई नही है। जैसा कि आचार्यों ने कहा है—

अधोमध्योर्ध्व लोकेषु नाभून्नास्ति न भाविता।
तत् सुखं यन्न दीयेत सम्यक्त्वेन सुबन्धुना॥

अर्थात् त्रिलोक और त्रिकालमें ऐसा वह कोई सुख नहीं है जिसे कि सम्यक्त्वरूपी परमबन्धु न देता हो।

मेरे कहने का सारांश यही है जिसे मैंने एक बार पहिले भी सेवामें प्रगट किया था, कि जैसे आप अपनी पुत्रियों को एक जरा से फोड़े आदि से दुःखी होनेपर उसके सुखी होने की रात्रीदिन चिन्ता करते हैं, क्या वैसी चिन्ता आपको अपनी प्यारी पुत्रियों को मिथ्यात्व जैसे महा दुःखों के सागर में फेंक देनेपर नहीं होती होगी? अवश्य होती होगी। परन्तु कुलरूढि रीति रिवाज आदि के कारण आप मौन धरकर रह जाते हैं। यह मैं भलीभांति जानता हूं। परन्तु यह कार्य इतना छोटा नहीं कि केवल रीति रिवाज के कारण उसकी उपेक्षा कर दी जाय।

यह ठीक है कि समाज इस विषयमें कुछ भी आपसे नहीं कह सकता क्योंकि आप बदलेमें अजैनों की लड़कियां लेते हैं। किन्तु मैं आपका एक तुच्छ सेवक होने से स्वामी के नाते से यह कह रहा हूं कि आप अपनी पुत्रियों को मिथ्यात्वियों को देना बंद करदें। यदि आप अपनी पुत्रियां अजैनों को देना बन्द न कर सकें तो कमसेकम उनको रानी चेलना जैसी धर्म शिक्षिता तो अवश्य करदें, जिससे कि वे विधर्मियों के यहां जानेपर स्वयं को ही नहीं अपितु पति के कुटुम्ब तक को सम्यक्त्व मार्गपर चलाने के लिये समर्थ हो सकें।

आपका नम्र सेवक—

हीरालाल जैन न्यायतीर्थ